कहे जन सिंगा

निमाड़ी सन्त सिंगाजी
के लोक पदों का चयन

डॉ. श्रीराम परिहार

कहे जन सिंगा

निमाड़ी सन्त सिंगाजी के लोक पदों का चयन

डॉ. श्रीराम परिहार

सम्पादक
कपिल तिवारी
नवल शुक्ल

सहायक सम्पादक
अशोक मिश्र

आदिवासी लोक कला एवं बोली विकास अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद भोपाल का प्रकाशन

प्रकाशक - निदेशक
आदिवासी लोक कला एवं बोली विकास अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्
मध्यप्रदेश जनजातीय संग्रहालय, श्यामला हिल्स
भोपाल-462002 फोन-0755-2661948, 2661640
E-mail : mplokkala@rediffmail.com,
mptribalmuseum13@gmail.com
web. : www.mptribalmuseum.com

प्रकाशन - प्रथम संस्करण 1996 (द्वितीय संस्करण 2018)

मूल्य - रु. 50/- (रुपये पचास केवल)

स्वत्वाधिकार - आदिवासी लोक कला एवं बोली विकास अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्

शब्दांकन - आदिवासी लोक कला एवं बोली विकास अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्

मुद्रण - मध्यप्रदेश माध्यम, भोपाल

● पुस्तिका से संबंधित समस्त विवादों का न्यायालयीन कार्यक्षेत्र भोपाल होगा।

● पुस्तक में छपी सामग्री के किसी भी माध्यम द्वारा उपयोग के पूर्व अकादमी से अनुमति लेना आवश्यक होगी।

● पुस्तिका में प्रकाशित समस्त सामग्री संकलनकर्ता, लेखक की अपनी है, आवश्यक नहीं है कि अकादमी इससे सहमत हो।

ISBN - 978-93-83899-38-8

निर्गुण भक्ति की साधना और वाणी का हमारी लोक परम्परा पर गहरा प्रभाव पड़ा है। उत्तर भारतीय प्रदेशों से महाराष्ट्र और दक्षिणी क्षेत्रों तक भक्ति की यह लोक परम्परा, एक सहज लोकधर्म और प्रभावी जन आंदोलन की तरह विस्तारित हुई थी। ग्रामीण क्षेत्रों में अनेक निगुण सन्तों ने अपनी साधना और रचना से, हमारे समाज के सबसे वंचित वर्गों तक धर्म साधना के सहज सार को लोगों तक पहुँचाया था, एक नई चेतना पैदा की थी।

सन्त सिंगाजी निमाड़ के लोकजीवन के सर्वप्रेरक सन्त साधक माने जाते हैं। उनके पदों के संकलन और उसके प्रकाशन का यह पहला व्यवस्थित प्रयास है। तत्कालीन आदिवासी लोक कला के आग्रह पर यह संकलन डॉ. श्रीराम परिहार ने किया है। अकादमी की ओर से उनके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं।

इस पुस्तक को पाठकों का अपार स्नेह प्राप्त हुआ। यह निमाड़ एवं भारत के जनसामान्य की संत सिंगाजी के प्रति अपार श्रद्धा के कारण हुआ है। इस पुस्तक की अभी भी बहुत माँग है, अधिक से अधिक पाठक एवं भक्त संत सिंगाजी के पदों एवं उनकी वाणी को पढ़कर भक्ति रस में अवगाहन करना चाहते हैं। अतः यह दूसरा पुष्प भक्तों के हाथों में सौंप रहे हैं।

- सम्पादक

निमाड़ी
के समस्त संतों को
श्रद्धापूर्वक

डॉ. श्रीराम परिहार

अनुक्रम

प्रस्तावना

यह बहुत साफ है कि संतों ने भारतीय जनमानस को समय–समय पर मार्ग दिखाया। सामाजिक विखण्डन और मनुष्य के दुर्दिनों में संतों की वाणियों ने औषधि का कार्य किया है। ज्ञान–विज्ञान की दौड़ का लक्ष्य मनुष्य की बेहतरी की तलाश है। विज्ञान भौतिक और दृश्यमान चीज़ों में सत्य का अन्वेषण करता है तथा एक चमक सत्य दुनिया के सामने लाकर रख देता है। ज्ञान जीवन और उसके वृहत्तर परिवेश की सृष्टि की अबूझ गुफाओं में जाकर विश्वसनीय रहस्यों का उद्घाटन करता है। उसकी यात्रा भीतर की अधिक होती है। ज्ञान के ज़रिए ही मनुष्य सबसे पहले स्वयं को परखता है, फिर अपने आसपास के संसार को जानता है तथा अंत में दुनिया को समझ कर जीवन के उत्स तक पहुँचता है। इस यात्रा के अनुभवों की गठरी स्वयं के काम की तो होती ही है, वह जमाने को भी उन अनुभवों के माध्यम से सचेत करता है। उसके अनुभव जब मनुष्य के कल्याण और जीव के उत्थान की आभ्यंतरिक प्रक्रिया को शब्द देते हैं, तब उसके द्वारा कहा गया शब्द जन–जन का कंठहार बन जाता है। वह जो गाता है– भजन हो जाता है। संत समय को शब्द देता है। मनुष्य को उसकी औकात बताते हुए उसे ऊपर और ऊपर उठने की राह बताता है।

संतों ने सांस्कृतिक एकता स्थापित करने में रेखांकित करने योग्य भूमिका निभायी है। संतों ने लोगों को जोड़ा और उनके

साहित्य ने करोड़ों हृदयों को। ईश्वर की भक्ति उन्होंने अपने यात्रा–पथ को प्रशस्त करने तथा स्वयं की मुक्ति की तलाश के उद्देश्य से भले ही की हो, पर कहीं गहरे में मनुष्य के कल्याण का भाव भी साफ तौर पर झिलमिलाता रहा है। उनकी वाणी देश काल से परे धरती पर अमर काव्य का सृजन करती है। सन्तों ने उन मूल्यों को काव्यमय अनुभूति–संसार दिया है, जिनसे मानवता का शृँगार होता है। फूलों के खिलने का मौसम सिरजा जाता है। तितलियों के पंखों को सुरक्षा देने की स्थिति निर्मित की जाती है। कवि अपने भीतर ही सूर्य को उगता हुआ देखता है। चन्द्रमा के अमृत से स्वयं को तृप्त महसूस करता है। हथेली पर एक नन्हा दीपक रखा हुआ अनुभव करता है। उसे लगने लगता है ज्ञान ही मुक्ति है। ज्ञान से ही मुक्ति है। तब वह मर कर भी अमर हो जाता है। जीवन के रहस्य सीधे–साधे तब समझ में आने लगते हैं।

संतों ने यह ज्ञान–भक्ति की ज्योति जगाने का कार्य अपने–अपने स्थानों पर रहकर किया, कुछ ने घूम–घूमकर भी। पर जो जहाँ था, अपने कोने से मगन होकर एक–एक मुट्ठी वाणी के, भजनों के फूल शून्य में फेंक रहा था। यह संपूर्ण भारत वर्ष में समय विशेष में होता रहा। उत्तुंग हिमालय से लेकर आसेतु समुद्र तक और मीरा के देश से लेकर धुर पूरब में चैतन्य महाप्रभु के बंगाल तक। संत सांस्कृतिक जागरण और आध्यात्मिक उठाव का कार्य कर रहे थे। अमानुषिक आचरण और सांस्कृतिक संकट की घड़ियों में यह मनुष्य की अस्मिता के बचाव की विशुद्ध निर्व्याज और अहिंसक कोशिश थी। यह कार्य एक ऐसी आचरण की सभ्यता भी था, उस पर लोगों ने सहज प्रत्यक्ष विश्वास कर लिया। आचरण की सभ्यता ही सर्वोपरि सभ्यता होती है। संतों की कथनी और करनी में फर्क नहीं था, इसलिए उसकी वाणी मात्र उपदेश न होकर अनुभव सत्य की

संवाहिका है। वे अपने समय के ऋषि हैं। उनका साहित्य काल के फलक पर लिखी गयी अमर कविता है।

विन्ध्याचल और सतपुड़ा के बीच नर्मदा की गोद में बच्चे–सा किलकारियाँ भरता हुआ सुन्दर निमाड़ क्षेत्र है। संतों की वाणी जब पूरे मध्यकाल में संपूर्ण भारतवर्ष को अलग–अलग कोणों से अनुगूँजित कर रही थी, उसी मध्यकाल में इस क्षेत्र में संत सिंगाजी की वाणी निर्गुण भक्ति की धारा प्रवाहित कर रही थी। उत्तर भारत में संत कबीर भरे बाज़ार में खड़े होकर घर फूँकने की बात कह रहे थे। जिन्दगी को फक्कड़पन से जीते हुए आत्मज्ञान की तलाश कर रहे थे और अमर हो जाने का ऐलान कर रहे थे। दक्षिण में संत तुकाराम अभंग गा रहे थे। संत नामदेव पंढरपुर में विठोबा (विट्ठल भगवान) के गुणगान कर रहे थे। बाद में नामदेव निर्गुण भक्ति की ओर उन्मुख हुए। उसी सौ–पचास वर्षों के आसपास मध्यप्रदेश में, निमाड़ में संत सिंगाजी निरगुनिया भजन गा रहे थे। एक धारा सबको जोड़ रही थी और उसमें जन–मानस डुबकी लगा–लगाकर अपने को उजला करने की कोशिश कर रहा था। इन संतों की आपसी भावयात्रा और विचारयात्रा के सूत्र स्पष्टतः जुड़ते दिखायी देते हैं।

डॉ. श्यामसुन्दर दास द्वारा संपादित एवं काशी नागरी प्रचारिणी सभा–वाराणसी द्वारा प्रकाशित कबीर ग्रंथावली में कबीर का जन्म संवत 1456 और मृत्यु संवत 1575 मानी गयी है। कबीरदास की मृत्यु के एक वर्ष पश्चात ही संवत 1576 में संत सिंगाजी का जन्म हुआ। सन्त सिंगाजी ने संवत् 1616 में देह त्यागी। उनके परमधाम सिधारने के बाद उनके जीवन चरित पर आधारित 'परचुरी' खेम नामक व्यक्ति ने लिखी। मैं इस बात की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ कि कबीर ग्रंथावली का आधार जिस हस्तलिखित प्रति को बनाया गया

है; उसके बारे में डॉ. श्यामसुन्दर दास भूमिका में लिखते हैं– 'इस संस्करण का मूल आधार संवत 1561 की लिखी हस्तलिखित प्रति है। यह प्रति खेमचन्द के पढ़ने के लिए मलूकदास ने काशी में लिखी थी। यह पता नहीं लगा कि ये खेमचन्द और मलूकदास कौन थे।' (ग्रंथावली पृष्ठ–1) संवत 1561 में मलूकदास द्वारा यह हस्तलिखित प्रति तैयार की गयी। संवत 1616 में संत सिंगाजी की समाधि के बाद उनकी जीवनी खेम नामक भक्त ने तैयार की। अतः यह तय है कि संत सिंगाजी के परचुरी लेखक खेम रहे हैं और हो न हो जिस खेम नामक व्यक्ति को बताने के लिए मलूकदास ने कबीरदास के भजनों की हस्तलिखित प्रति तैयार की; वह खेम सिंगाजी की जीवनी 'परचुरी' रुप में लिखने वाला व्यक्ति ही हो। यदि यह है तो खेम द्वारा लिखी 'परचुरी' का महत्त्व तो बढ़ा ही है, उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह पता चलती है कि कबीर और सिंगाजी के समकालीन दो भक्त मलूकदास और खेम का आपस में निकट सम्बन्ध था और वे दो महान निर्गुण कवियों के साहित्य और जीवनी पर काम कर रहे थे। यही खेमचंद आगे चलकर खेमदास हो गये, जैसा कि अनेक व्यक्तियों के नामों के साथ हुआ।

जिस समय सिंगाजी हुए थे, उस समय संपूर्ण भारत में भक्ति की चाँदनी छिटकी हुई थी। निमाड़ अंचल में सन् 1400 से लेकर सन् 1600 तक फारूखी राजाओं का शासन था। बुरहानपुर और असीरगढ़ का किला राजनीतिक गतिविधियों के केन्द्र थे। इन शासकों का प्रभुत्व और शासन बड़वानी तक था, जिस क्षेत्र में सिंगाजी का जन्म हुआ था। सिंगाजी का कर्म–क्षेत्र भी निमाड़ ही (पूर्व निमाड़) था। सारे भारत के समाज की भाँति ही निमाड़ के इस क्षेत्र का समाज भी इन शासकों के प्रभाव में दबा–दुबका तो था ही, साथ ही उन सारे कार्यों को भी वह देख रहा था, जो भारतीय संस्कृति के उन्मूलन हेतु

किये जा रहे थे। भक्ति आन्दोलन चौदहवीं शताब्दी से भले ही पुरजोर रूप में चला हो, पर भक्ति के बीज बहुत पहले 8वीं 9वीं शताब्दी में अलबार संतों की भक्ति भावना में करकट लेते नजर आते हैं। भक्ति अचानक 50–100 वर्षों में प्रकट नहीं हो गयी। इसके पीछे पाँच–छः सौ वर्षों की पीठिका रही है, यही मध्यकालीन निर्गुण और सगुण दोनों ही भक्ति धाराओं का स्रोत भी रही है। रामानंद, उनसे भी पूर्व रामानुजाचार्य और उनसे भी पूर्व के अलवार संतों की परंपरा भक्ति आंदोलन के मूल में है। इस्लाम का आगमन और उसके अनुयायी शासकों के अत्याचारों के फलस्वरूप प्रतिक्रिया भक्ति आन्दोलन के कारणों का एक बिन्दु भर हो सकता है, एक मात्र कारण नहीं। निमाड़ क्षेत्र के इन फारूखी राजाओं के शासनकाल में लगभग दर्जनभर सूफी संत थे, जो इस्लाम की सूफी भक्ति धारा के माध्यम से भाईचारे और मानवतावाद का संदेश दे रहे थे। इनमें कुछ सूफी संत तो धर्म की दृष्टि से बहुत ही उदार थे। भक्ति का निर्गुण मतवाद दोनों से मेल खाता था। कबीर की निर्गुण धारा में इस्लाम का ऐकेश्वरवाद और हिन्दुओं के बहुदेववाद के बीच समन्वय की दृष्टि ने काम किया। समाज को टूटने और हताश होने से इन्होंने बचाया। इसके लिए निर्गुण भक्ति धारा की इसी परंपरा में संत सिंगाजी आते हैं। सिंगाजी के साहित्य संकलन और उसका ठीक–ठीक मूल्यांकन यदि होता है, तो निरगुणिया भक्ति के कई पहलू, आयाम और रहस्य उद्घाटित हो सकेंगे।

सिंगाजी वास्तव में जनकवि हैं। उनकी जीवनी और कार्यों को निमाड़ का जन–जन श्रद्धाभाव से स्मरण करता है। वे संत कवि, निर्गुण कवि तो हैं ही, उससे भी महत्त्वपूर्ण यह है कि वे लोक के प्रिय संत कवि हैं। लगभग पाँच सौ साल पहले हुए इस कवि के भजन और उनकी वाणी आज भी वाचिक परम्परा के रूप में जीवित है।

उनके जीवन पर सबसे पुरानी और हस्तलिखित प्रति जन–खेम नामक व्यक्ति की है। संवत 1616 (सन् 1559) की यह प्रति 52 पृष्ठ की परिचयात्मक पुस्तिका के रूप में है, जिसे 'परचुरी' कहा जाता है। इसमें सिंगाजी का जीवन परिचय और कार्यों का उल्लेख मात्र है, उनके साहित्य का समावेश इसमें नहीं है।

मुझे संवत 1882 (सन् 1825) में तैयार की गयी लगभग 190 वर्ष पुरानी एक हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई है। यह बहुत ही जीर्ण अवस्था में है। इसकी लेखन शैली प्राचीन शब्दों को मिलाकर लिखने की है। इसमें भी सिंगाजी का जीवन परिचय ही दिया गया है। भजन इसमें भी नहीं हैं। सन् 1934 में श्री सुकुमार पगारे के प्रयास से सिंगाजी साहित्य शोधक मंडल की स्थापना की गयी। इस संस्था ने सिंगाजी मेले के अवसर पर तीन वर्षों तक उत्सवों का आयोजन कर सिंगाजी के साहित्य पर शोधपूर्ण कार्य किया। सन् 1937 में सिंगाजी की जीवनी पर आधारित लगभग 40–50 पृष्ठों की पुस्तक भी प्रकाशित की गयी। जिसमें विट्ठलराव पटवारी, (मांडला) पं. माखनलाल चतुर्वेदी, व्योहार राजेन्द्र सिंह, पं. रामनारायण उपाध्याय आदि के लेख थे।

ग्राम जैतापुर (हरसूद) निवासी अनारसिंह साद (पटवारी) के पास से मुझे सन् 1958 में प्रकाशित 'संत सिंगाजी की वाणी' नामक पुस्तक की एक प्रति प्राप्त हुई है। इस पुस्तक में सिंगाजी की जीवनी, उनकी वाणी, दृढ़ उपदेश, सात वार, पन्द्रह तिथि, दोष बोध, आत्मध्यान, शरद, नरद, देश की वाणी, बारहमासी, सिंगाजी और दलुदास के कुछ भजन, तथा सिंगाजी की 'परचुरी' आदि रचनाएँ संग्रहीत हैं। सिंगाजी की 'परचुरी' (जीवनी) और उनके साहित्य को व्यवस्थित रूप से प्रकाशित करने का यह पहला और महत्त्वपूर्ण कार्य है। इस

पुस्तक का आकार $7^{1/2}$''X 12'' (इंच) अर्थात् रजिस्टर सरीखा है। इसमें कुल पृष्ठ 84 हैं। इसके संग्रहकर्ता घासीदास तथा प्रकाशक धनराज प्रसाद हैं। सरस्वती विलास प्रेस, नरसिंहपुर से इसका मुद्रण हुआ है। यह पहली और प्रामाणिक मुद्रित पुस्तक है।

सन् 1965 में संत सिंगाजी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर मध्यप्रदेश साहित्य परिषद् के सहयोग से पं. रामनारायण उपाध्याय की पुस्तक 'संत सिंगाजी : एक अध्ययन' प्रकाशित हुई। इस कृति ने संत सिंगाजी के जीवन और साहित्य को पाठकों के समक्ष लाने में महत्त्वपूर्ण कार्य किया। सन् 1966 में डॉ. रमेशचन्द्र गंगराड़े का शोध प्रबंध 'संत सिंगाजी' प्रकाशित हुआ। यह कार्य काफी मेहनत और शोधपूर्ण दृष्टि के साथ किया गया। सिंगाजी के जीवन, उनके साहित्यिक, दार्शनिक और आध्यात्मिक पक्ष पर इस पुस्तक में गहराई से विचार किया गया। सन् 1989–90 में रामशंकर गंगराड़े गुरुजी ने अपने प्रयासों से संत सिंगाजी के भजनवाणी, परचरी पुराण नाम से पुस्तक प्रकाशित कर इस दिशा में काम किया है।

बावजूद इनके सिंगाजी का संपूर्ण साहित्य अभी मुद्रित रूप में सामने नहीं आया है। सिंगाजी के भजनों को छोड़कर उनका बाकी साहित्य तो प्रकाश में आ गया है, परन्तु उनके भजन अभी भी वाचिक परम्परा की अमूल्य धरोहर बने हुए हैं।

सिंगाजी का जन्म हस्तलिखित 'परचुरी' के आधार पर वर्तमान बड़वानी जिले के (बड़वानी स्टेट अंतर्गत) खजूरी ग्राम में वैसाख सुदी नवमी बुधवार संवत् 1576 (सन् 1519) में हुआ था। पिता भीमाजी तथा माता गौरादेवी थी। ये जाति के गवली थे। गवली पशुपालक जाति हुआ करती थी। सिंगाजी भी बचपन में भैंसें चराने का काम किया करते थे। धोबी के कार्यों से दुखित होकर अपने माता–पिता

को खजूरी छोड़ने की सलाह दी और अपने सामान तथा जानवरों (जिनमें 300 भैंसे और 500 गायें थीं) के साथ हरसूद (वर्तमान खंडवा जिले की तहसील) आकर बस गये।

जन्म खजूरी में भयो, गौली घर अवतार।
माता गौरा को पय पियो, हर्‌यो भूमि को भार।।
संवत पन्द्रह सौ छित्तर जानी, जन्म भयो खजूरी बड़वानी।
वैसाख सुदी नौमी सारा, प्रगट भये दिन बुधवारा।
वहाँ चलकर आये हरसूद, करी नौकरी प्रगटे हजूर।

(सिंगाजी की वाणी पृ – 5)

बड़े होने पर सिंगाजी ने भामगढ़ (खंडवा जिले का एक गाँव जहाँ पुरानी जमीदारी थी) के राजा लखमेंसिंह के यहाँ नौकरी कर ली। यह संवत 1598 (सन् 1541) की बात है, तब सिंगाजी 24 वर्ष के रहे होंगे। वे हरसूद से राव लखमेंसिंह की डाक लाने, ले जाने का काम करते थे। सिंगाजी के व्यवहार और कुछ चमत्कारिक कार्यों के कारण राजा लखमेंसिंह उन्हें नौकर न मानकर परिवार का सदस्य और राज कार्यों में उन्हें अपना सहयोगी मानते थे। लोक में सिंगाजी के चमत्कारों एवं आश्चर्यजनक कार्यों की अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। इन्हें आत्मज्ञान स्वामी मनरंगगीर के भजन को सुनकर हुआ। एक दिन ये भामगढ़ से डाक लेकर घोड़ी पर सवार होकर हरसूद जा रहे थे। रास्ते में इन्हें स्वामी मनरंग के मुख से स्वामी ब्रह्मगीर का यह भजन सुनाई पड़ा–

समुझि लेवो रे मना भाई, अन्त न होय कोई आपणा।

सिंगाजी ने पूरा भजन सुना। वैराग्य भाव से भर गये। मनरंग स्वामी से गुरु–दीक्षा लेने की इच्छा प्रकट की। मनरंग स्वामी ने

सिंगाजी से गृहस्थ त्याग की बात कही। सिंगाजी ने राजा लखमेंसिंह की नौकरी छोड़ दी। हरि भजन में लग गये। निर्गुण ब्रह्म के गुणगान में पूरी तरह तल्लीन होकर जीवन और जगत के रहस्यों को भजनों में तथा अपनी वाणी में संसार को बताने लगे। सिंगाजी द्वारा गुरु–दीक्षा संवत 1615 (सन् 1558) में ली गयी। इस समय उनकी अवस्था 39 वर्ष की थी। संवत 1598 (सन् 1541) में उन्होंने नौकरी शुरू की। उन्होंने सवा युग (एक युग 12 वर्ष का, सवा युग 15 वर्ष का) अर्थात् 15 वर्ष नौकरी की। 'युग सवा हमने करी चाकरी।' अतः 24 वर्ष की उम्र में नौकरी आरंभ की और 39 वर्ष की उम्र में नौकरी छोड़कर गुरु दीक्षा ली। सिंगाजी के गुरु स्वामी मनरंगगीर और मनरंगगीर के गुरु स्वामी ब्रह्मगीर थे, जो निमाड़ की संत परंपरा के प्रथम संत हैं।

गुरु दीक्षा के बाद वर्तमान हरसूद तहसील के गाँव पीपल्या में वे जाकर रहने लगे। उनका पूरा समय आध्यात्मिक चिन्तन–मनन और भजन में ही बीतने लगा। इसके एक वर्ष बाद अर्थात् संवत 1616 (सन् 1559) में उन्होंने देह त्यागकर समाधि ले ली।

सिंगाजी द्वारा समाधि लेने के सम्बन्ध में दो प्रसंग हैं। जन मानस में प्रचलित प्रसंग के अनुसार संवत 1615 (सन् 1558) में श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के दिन सिंगाजी अपने गुरु मनरंग स्वामी के पास थे। गुरु ने सिंगाजी से कहा कि वे सो रहे हैं और श्रीकृष्ण जन्म के समय अर्धरात्रि को चन्द्रमा उगते समय उन्हें जगा देना, ताकि वे उठकर स्नान आदि कर कृष्ण की पूजा कर सकें। यह कहकर मनरंगगीर सो गये। आधी रात बीत जाने पर भी कृष्ण जन्म की घड़ी सिंगाजी ने संकोचवश गुरु को नहीं उठाया। यह भी सोचा कि गुरु गहरी नींद में हैं और फिर इस व्यर्थ की पूजा–पाठ से क्या होता है?

यह सोचकर गुरु को सोने दिया। प्रातः गुरु जागे, तो नाराज हुए कि उन्हें रात को उठाया क्यों नहीं तथा क्रोधित होकर कहा– जाओ! अगली जन्माष्टमी तक मुझे अपना मरा मुँह दिखाना।'

सिंगाजी चुपचाप अपने गाँव पीपल्या आ गये। इसके ठीक 11 माह बाद अर्थात अगली जन्माष्टमी के एक माह पूर्व ही उन्होंने सावन शुक्ल पक्ष नवमीं संवत् 1616 (सन् 1559) को जीवित समाधि ले ली। देह त्याग दी। यह खबर जब गुरु को पहुँची तो वे बहुत पछताये।

'परचुरी' में समाधि लेने की घटना का वर्णन इससे भिन्न है। इसके अनुसार सिंगाजी ने स्वयं ही समाधि लेने का निर्णय लिया। साथ उनके गुरु का भी संदेश मिला कि अब सिंगाजी को देह त्याग कर समाधि ले लेना चाहिए। गुरु ने सावन शुक्ल पूर्णिमा को देह त्यागने को कहा था, सिंगाजी ने गुरु आज्ञा को शिरोधार्य कर उससे पूर्व ही सावन शुक्ल नवमी को अपने समस्त परिजनों की उपस्थिति में समाधि ले ली।

गुरुभाई संदसो लायो, सिंगाजी स्वामी आनन्द पायो।
श्रावण पून्यो छूटे देही, गुरु ने लिख पठायो येही।
श्रावण सुदी नवमी सार, ता दिन स्वामी न कियो विचार।
भयो स्वामी अन्तरध्यान, निकसी जोत मे जोत समान।
रोय कुटुम कबेलो घर नार, सिष, सखा आदिक अपार।

(परचरी पृष्ठ 31,37,38)

'परचुरी' में वर्णित प्रसंग अधिक विश्वसनीय है। स्पष्ट है कि सिंगाजी गुरु दीक्षा के बाद मात्र 11 माह तक ही जीवित रहे। उनका संत जीवन मात्र एक वर्ष का रहा। इस अवधि में उन्होंने जो कुछ कहा और गाया वह काल के पन्नों पर लिखे गये अमर शब्द हो गये।

उनके भजन जन–जन की अभिव्यक्ति बन गये और मनुष्य जीवन की अँधेरी रातों के प्रकाश–स्तंभ हो गये। उनकी स्मृति में उनके शिष्य नारायण दास ने उसी वर्ष संवत् 1616 (सन् 1559) से ही कुआर सुदी पूर्णिमा (शरद पूर्णिमा) पर जतराँ (मेला) लगाने की घोषणा कर दी। तब से लेकर आज तक ग्राम पीपल्या (खंडवा–भोपाल रेल मार्ग पर सिंगाजी नामक स्टेशन से 3 कि.मी. दक्षिण–पश्चिम में स्थित अब यह रेलमार्ग बाँध के पानी में डूब गया है। बीड़ रेल्वे स्टेशन से सिंगाजी जाया जा सकता है।) में सिंगाजी की समाधि पर 10 दिन का मेला लगता है।

सिंगाजी पढ़े–लिखे नहीं थे। उन्होंने जो कुछ आत्मज्ञान के माध्यम से अनुभव किया, वह कह दिया। उनके साहित्य में भाव और विचार ही प्रमुख हैं। कथ्य ही मुख्य है। कथन तो अटपटी वाणी में है। शास्त्रों की कसौटी वहाँ काम नहीं करती। उनका उपलब्ध साहित्य इस प्रकार है –

'साखी' अनुभव और ब्रह्मज्ञान पर आधारित दोहे हैं। ये दोहे भक्तों और गायकों द्वारा भजन गाने के पूर्व में गाये जाते हैं।

'भजन' सिंगाजी की निर्गुण और रहस्यवादी दृष्टि के संवाहक हैं। देह को मंदिर और ब्रह्म को उसमें स्थित देवता के रूप में अनुभव किया है। निर्गुण ब्रह्म और ब्रह्म–जीव की अखण्डता इनमें प्रतिपादित की है। 'भजन' सिंगाजी का अमर संदेश और साहित्य दोनों है।

'दृढ़ उपदेश' दोहों और चौपाइयों में है। इनमें संसार, जीव, ब्रह्म, माया आदि से जुड़े पक्षों और दार्शनिक तत्त्वों का विश्लेषण किया गया है। इनकी संख्या लगभग 200 है। मैंने विषय की विवेचना एवं पाठ सुगमता की दृष्टि से इनके पूर्ववत क्रम में उलट–फेर किया है। सम्पूर्ण दोहा–चौपाइयों को पाँच चौपाई के बाद एक दोहा रूप में

संपादित कर एकरूपता और सुगमता लाने का प्रयास किया है।

'आत्मध्यान' में सिंगाजी ने योग, प्राणायाम और समाधि की प्रक्रिया बतायी है। योग संबंधित नाड़ियाँ, षटचक्र, कुंडलिनी, बंकनाल, नाभिकमल, ब्रह्मरंध्र आदि के विषय में अपने अनुभव सुनाये हैं।

'दोषबोध' में मानवीय क्रिया–व्यापारों को रेखांकित करते हुए उन कार्यों को अनुचित करार दिया है, जो नैतिक आचरण और मनुष्य हित के विपरीत होते हैं। उन कार्यों को करने से दोष (पाप) लगता है।

'नरद' में सदगुरु और ब्रह्म का गुणगान है। संसार के भ्रम में पड़ने और मनुष्यों के अज्ञान के प्रति गहरा क्षोभ प्रदर्शित किया है।

'शरद' जीवन की क्षणभंगुरता की घोषणा करने वाली रचना है। शरदपूर्णिमा के उदाहरण से यह बताया है कि शरद का सारा सौन्दर्य क्षण दो–क्षण में समाप्त हो जाता है। जीवन की शरद–पूर्णिमा का सौन्दर्य भी एक दिन नष्ट हो जाना है। 'देश की वाणी' में संतों के उस देश की बात कही है, जहाँ ध्यान मार्ग के बल पर पहुँचकर संत ब्रह्म दर्शन और आनन्द में निमग्न रहता है। उस देश की अनेक विशेषताएँ अनेक तरह से बतायी हैं।

'बाणावली' में अनुभव जन्यता तथा संसार की सचाई (मर्म) को सीधे–सीधे अभिव्यक्ति दी है। जीवन के भावों और मनोविकारों का गहन और सूक्ष्म विवेचन करते हुए संसार की निस्सारता पर दृष्टिपात किया है।

'सातवार' में सप्ताह के सातों वारों के माध्यम से जीवन की नश्वरता, ज्ञान की महत्ता, ब्रह्म की साध्य रूप में प्राप्ति की कामना

और साधना मार्ग को प्रशस्त किया है।

'पन्द्रह तिथि' भारतीय महीनों की पन्द्रह तिथियाँ हैं। इनका भौतिक महत्त्व नकारते हुए सिंगाजी प्रत्येक तिथि को शुभ मानते हैं तथा कार्य विशेष के आरंभ और समापन की दृष्टि से सभी को समान निरूपित करते हैं।

'बारहमासी' में बारह महीनों के माध्यम से जीवन की गहन अनुभूतियों का बखान किया है। प्रत्येक मास के मौसम और स्थिति विशेष को भीतर ही घटित होते अनुभव किया है।

कुछ लोगों का मत है कि संत सिंगाजी के 1100 भजन हैं। इसकी पुष्टि पं. रामनारायण उपाध्याय ने सन् 1971 में मण्डलेश्वर आयोजित निमाड़ लोक–साहित्य एवं विकास परिषद सम्मेलन में दिये गये अपने उद्घाटन भाषण में भी की है। (विवरणिका पृ. 7) कुछ भक्तों के मतानुसार भजनों की संख्या 800 है, परन्तु ये कहीं भी लिपिबद्ध नहीं है। इन दोनों ही संख्याओं के कोई ठोस प्रमाण नहीं हैं।

यहाँ एक बात स्पष्ट कर देनी चाहिए कि संवत् 1615 में सिंगाजी स्वामी मनरंगगीर को अपना गुरु बनाते हैं। उनसे ज्ञान प्राप्ति के मात्र 11 महीने बाद ही सिंगाजी समाधि ले लेते हैं। अतः उन्होंने जो कुछ निर्गुण के संबंध में तथा जीवन–जगत के सत्य को भजनों के माध्यम से कहा–वह इस 11 माह की अवधि की ही उपलब्धि है। इस दृष्टि से देखने पर तो उनके भजनों की संख्या इतनी अधिक नहीं होनी चाहिए। परन्तु क्या उन्होंने ज्ञान–प्राप्ति या गुरु दीक्षा के पूर्व कुछ नहीं गाया होगा? ज्ञान तो उन्हें खजूरी ग्राम (बड़वानी) छोड़ने और हरसूद में आकर बसने के बाद, हरसूद से

भामगढ़ डाक ले जाते समय मनरंगगीर का एक भजन सुनकर हुआ। इसके बहुत पहले खजूरी छोड़ते समय का प्रसंग तथा अन्य दूसरी घाटनाओं का वर्णन भी उनके द्वारा कहे गये भजनों के माध्यम से ही मिलता है। स्पष्ट है कि वे भजनों के माध्यम से अपनी बात गुरु दीक्षा के पूर्व भी कहते रहते थे। इस दृष्टि से उनके भजनों की संख्या 1100 से भी अधिक हो सकती है। लिपिबद्ध नहीं होने के कारण 500 वर्षों की इस यात्रा में जो कुछ वाचिक परम्परा में बचा रहा और जितना कुछ लोगों ने अपनी स्मृति में संजोए रखा वही वर्तमान में प्राप्त है।

सिंगाजी कबीर की परम्परा के संत हैं। कबीर के राम की तरह ही सिंगाजी के राम निर्गुण, निराकार ब्रह्म ही हैं। सिंगजी ने उस अजन्मा, अगोचर, अरूप ब्रह्म को संबोधित करने के लिए एक नामभर दिया है और वह नाम राम है। 'राम' के अतिरिक्त निर्गुण, केवल ब्रह्म, साहेब, गोविन्द, सोहम् आदि संबोधन भी दिये हैं। सिंगाजी के राम दशरथ पुत्र नहीं हैं। वह अखिल ब्रह्मांड में व्याप्त है, सूक्ष्म शक्ति हैं। वह सर्वोपरि और सर्वशक्तिमान भी हैं। वह सकल चराचर में स्थित है। वह सब में हैं और सबसे अलग तथा ऊपर भी हैं।

निरगुण ब्रह्म है न्यारा, कोई समझे, समझण हारा।
खोजत–खोजत ब्रह्मा थाके, उनने पार नहीं पाया।
खोजत–खोजत सिवजी थाके, वो ऐसा अपरम्पारा।।
सेष सहस मुख रटे निरंतर, रैन दिवस एक सारा।
ऋषि मुनि और सिद्ध चौरासी, तैंतीस कोटि पचिहारा।।

सिंगाजी का निर्गुण ब्रह्म भारतीय ब्रह्मवाद और उपनिषद के शून्यवाद के निकट है। हालाँकि सिंगाजी अनपढ़ थे। उन्होंने दार्शनिक और आध्यात्मिक ग्रंथों का अध्ययन नहीं किया था। पर ज्ञानी को इन सबके अध्ययन की जरूरत एक स्थिति के बाद नहीं

हुआ करती। उस निर्गुण ब्रह्म तक पहुँचना भी आसान नहीं है। सिंगाजी का ब्रह्म इस शरीर के भीतर ही स्थित है। उसे और कहीं नहीं खोजा जा सकता। वह घट भीतर ही समाया हुआ है।

देवल देख ले रे, जामे सत्त निरंजन देव।
बिन टॉकी का देवल घड़िया, जामें देव त्रिभंगा है।
अलख पुरुष पर लख्यो न जाई, पल–पल में बहुरंगा है।

इसी न देखे जा सकने वाले निर्गुण का स्थान सिंगाजी ने मस्तिष्क के ब्रह्मरंध्र के भीतर बताया है। उसे शून्य शिखर भी कहा है। वहाँ झिलमिलाता हुआ नूर बरस रहा है। उस निर्गुण की व्याख्या करते हुए कबीर कहते हैं– 'कबीर तेज अनन्त का, मानो उगि सूरज सेनी'। मानो सूर्यों की सेना आ रही हो। सिंगाजी कहते हैं– 'जहाँ कोटिक उगिया सूर'। वहाँ आनन्द की वर्षा होती है। वहाँ एक भरपूर नदी है। वहाँ सुख का समुद्र लहरा रहा है। वहाँ अक्षयवट है, उसमें अमृत फल लगा है। आदि–आदि प्रतीकों के माध्यम से उसे व्याख्यायित किया है।

देखो बिजली का झल्लारा, झिलमिल बरसे बादल कारा।
सुन्न सिखर पर साँई बैठा, उनका हमें सहारा।।

वह ईश्वर एक ही है। सिंगाजी ने बहुदेववाद का विरोध किया है। उनका मत है कि एक ही बूँद की सारी रचना है। एक ही शक्ति से संपूर्ण संसार का सर्जन हुआ है। जीव और ब्रह्म दो नहीं, एक ही हैं। यह संसार भी अन्त में उसी ब्रह्म में लय हो जाता है। संसार माया का जाल है। इससे पार पाकर ही ईश्वर की प्राप्ति संभव है। वह ब्रह्म ही प्राणतत्त्व है। वह ही शक्ति तत्त्व है। उत्पत्ति, पालन और लय का केन्द्र वही ब्रह्म है। वह न मंदिर में है, न मस्जिद में। वह 'सब घट माही' समाया हुआ है।

दिन दरियाव अमीरस, मीठा, और नीर सब खारा।
एक बूँद का सकल पसारा, छिटक रहयो न्यारा–न्यारा।।

ब्रह्म से साक्षात्कार सहज नहीं है। ज्ञान की प्राप्ति आवश्यक है। गुरु के बिना ज्ञान संभव नहीं। संपूर्ण भक्ति परम्परा में जो उच्च स्थान गुरु का है, सिंगाजी के यहाँ भी गुरु का स्थान उससे कमतर नहीं है। सतगुरु ही ब्रह्म तक जाने का मार्ग बताता है। इसलिए सदगुरु की शरण में जाना आवश्यक है। गुरु की कृपा ही कल्याण का मार्ग है। गुरु ही अमृत फल बह्म को दिखाने वाला है। गुरु ज्ञान का मार्ग बताकर ईश्वर तक जाने का मंत्र देता है, जिससे जीव को पुनः जन्म नहीं लेना होता। गुरु ब्रह्म की शरण में पहुँचाने वाला तथा मनुष्य का उद्धारक मार्ग बताने वाला दयावन्त है। इसलिए सिंगाजी ने अनेक भजनों में गुरु महिमा का गान किया। स्वयं को शरण में लेने की अरदास की। ज्ञान देने हेतु विनती की है।

गुरु बिन मारग कौन बताये।
नदिया गहरी जल डुबोये, नीर बहता जाये।
गुरु कृपा से पकड़ बुलावे, वोही पार लगाये।

गुरु ने कसकर बाण मारा। हृदय घायल हो गया। इस बेचैनी को सिंगाजी उसी स्तर पर कहते हैं, जिस पर कबीर कहते हैं। ज्ञान का बाण लगते ही ईश्वर से मिलने के लिए आकुलता बढ़ जाती है। साधना मार्ग साफ दिखाई देने लगता है। सिंगाजी ने अपने साहित्य में उस साधना मार्ग को बहुत सकरा बताया है। 'राह हमारी बारीक है' के जरिए मार्ग की कठिनता और सूक्ष्मता को इंगित किया है। वह यात्रा भीतर की ही है। भीतर ही वह निरंजन बैठा है, इसके लिए सिंगाजी ने नाम स्मरण, इंद्रिय निग्रह, ध्यान, प्राणायाम क्रिया की चर्चा की है। सिद्धों और नाथों की साधना पद्धति का प्रभाव सिंगाजी

पर था। आत्मा शारीरिक और मानसिक साधन से परमात्मा में निमग्न हो जाए, एक अलौकिक सत्य का अनुभव होने लगे, वही योग साधना है। योग साधना के आठों अंगों यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि की स्थितियाँ उनके भजनों में आयी हैं।

सोहम् ब्रह्म को सुमिरन करी न, जाकी नहीं निसंगी।
दिव्य दृष्टि चढ़ि गयो सुरंगम, काल देखी रह्यो जंगी।।

परमात्मा से मिलने के लिए प्राणायाम क्रिया आवश्यक है। प्राणायाम से प्राणवायु के द्वारा शरीर स्थित नाड़ियों में शक्ति का संचार होता है। शिवसंहिता में 3 लाख 50 हजार नाड़ियों का उल्लेख है। गोरखशतक में इनकी संख्या 3 लाख है। ये समस्त नाड़ियाँ मनुष्य शरीर के अन्दर ही हैं। शरीर में ही 6 चक्र, 16 आधार, 5 आकाश हैं। इन 3 लाख नाड़ियों में 10 नाड़ियों की भूमिका जीवन में एवं प्राणायाम क्रिया में महत्त्वपूर्ण है। 1. इड़ा (शरीर में बाँई ओर) 2. पिंगला (शरीर के दाँई ओर) 3. सुषुम्ना (मध्य में) 4. गांधारी (बाँई आँख में) 5. हस्तजिह्वा (दाहिनी आँख में) 6. पुष्प (दाहिने कान में) 7. यशस्विनी (बायें कान में) 8. अलंभुषा (मुख में) 9. कुहुष (लिंग स्थान में) 10. शंखिनी (मल स्थान में)।

इसी तरह 6 चक्र हैं। 1. मूलाधार (गुदा स्थान के समीप) 2. स्वाधिष्ठान (लिंग मूल में) 3. मणिपूरक (नाभि में) 4. अनाहत (हृदय में) 5. विशुद्ध (कंठ में) 6. आज्ञा (त्रिकुटी या भौंहों के बीच में) सातवां चक्र भी माना गया है, जिसे ब्रह्मरंध्र कहते हैं। नाड़ियों में इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना की चर्चा सिंगाजी के भजनों और आत्मध्यान में बार–बार आयी है। सुषुम्ना नाड़ी के नीचे मुख में कुण्डलिनी शक्ति होती है। प्राणायाम के द्वारा कुण्डलिनी जागृत होती है। इड़ा और

पिंगला का जब सुषुम्ना नाड़ी से बहने वाली प्राणवायु के साथ प्राणायाम आदि द्वारा मेल होता है, तब कुण्डलिनी जागृत होती है। जागृत होकर व उर्ध्वमुखी होती है। यह षटचक्रों को भेदती हुई सहस्रार या ब्रह्मरंध्र में प्रवेश करती है। वहाँ अमृत झरता है। जीवात्मा उसका पान करती है। उसी अवस्था में 'अनहद नाद' सुनाई पड़ता है। प्रकाश दिखाई देता है। आत्मा, परमात्मा में विलीन हो जाती है। यही समाधि की अवस्था है। इसी को कुण्डलिनी योग या लय योग कहते हैं।

अगम घाट त्रिवेणी तीरथ, जहाँ सुरत लौ लाओ।
गंगा–जमुना सरस्वती, त्रिवेणी में नहाओ।।
अजपा ऊपर एक मुकाम, जोत एक झिलमिलाही।
अनहद नाद बजे चौघड़िये, भँवर गुफा के माहीं।।

सिंगाजी के साहित्य में 'बंकनाल' का उल्लेख भी मिलता है। ध्यान योग में बंकनाल का महत्त्वपूर्ण स्थान है। बंकनाल का उद्‌गम मूलाधार में है। वह मूलाधार से चलकर, नाभि के बाँई ओर से आज्ञा चक्र में मिलती हुई और ऊपर को जाती है। यहाँ इसका आकार एक अर्धवृत्ताकार कमलनाल सरीखा हो जाता है। उसके बाद यह शून्य प्रांत में प्रवेश कर जाती है।

बंकनाल उलटी कढ चालें, मेंढक रवि–ससि धारा।
सुकमण नार सासरो निरमळ, वाही में सिरजनहारा।।

हठयोग और ध्यान योग से जुड़े प्रतीकों का प्रयोग सिंगाजी ने किया है। गंगा, यमुना, सरस्वती, क्रमशः इड़ा, पिंगला और सुषम्ना के लिए प्रयुक्त प्रतीक हैं। त्रिवेणी भौंहों के बीच का वह स्थल है, जहाँ ये तीनों नाड़ियाँ मिलती हैं। इसे त्रिकुटी भी कहा है। दरियाव शब्द

अनेक स्थलों पर आया है। यह समुद्र के पर्यायवाची रूप में है तथा ब्रह्मरंध्र या सहस्रार के लिए प्रयोग किया गया है।

बंकनाल से अमीरस पीना, त्रिवेणी में नहावण करणा।

शरीर को गढ़ या किला का रूपक देते हुए भी ध्यान योग, क्रिया को सिंगाजी ने अभिव्यक्ति दी है। इसमें आँख, कान, नाक आदि दस दरवाज़े हैं। जीव को योद्धा बनाकर उसे शून्य शिखरगढ़ पर विजय हेतु प्रेरित किया है। सिंगाजी पशुपालक, खेतीहर और राजदरबारी तीनों ही अवस्थाओं से सीधे जुड़े थे, इसलिए उनके काव्य में सारे प्रतीक इन्हीं क्षेत्रों से अपने पूरे दमखम के साथ आये हैं। अनगढ़ रूप में भी बैठा हुआ शब्द उतना ही समर्थ और सार्थक है, जितना परिष्कृत भाषा का शब्द। ये शब्द अपने अर्थ में गहरा अनुभूति–समन्दर लिये हुए हैं।

सिंगाजी ने पूजा–पाठ, जाति–वर्ण, कर्मकांड, मूर्तिपूजा, रोजा–नमाज आदि बाहरी आडम्बरों का जबरदस्त विरोध किया है। उन्होंने साधना के भीतरी पक्ष पर जोर दिया। तमाम बाहरी दिखावटी और बनावटी साधनों को नकार दिया। यह व्यक्ति की दृष्टि को साफ करने और समाज को स्वस्थ करने के लिए आवश्यक था।

नागा मुनि और दिगम्बर, मुक्त राह नहीं जाना।
करे तपस्या झूले उरध मुख, तो भी साहब नहीं माना।।
देवल देवी पूजे बहुतेरा, बैठ गये तुलादाना।
लिंग भग पूजे बहुतेरा, तो भी साहब नहीं माना।।
मूड़ मुड़ावे जटा रखावे, नगर फिरे ज्यों भैंसा।
चमड़े ऊपर खाक लगाई, मन जैसा का तैसा।।
मुल्ला होकर बाँग पुकारे, बंद किये मसजिद के द्वारे।

हाट घाट, जिन पर रखता महबूब की बाट निहारे।।

जीवन की संपूर्ण व्याख्या सिंगाजी के पास है। माया का फंदा जटिल है। जीव उसमें भ्रमित होकर हरि को बिसर जाता है। अनेक सांसारिक व्यावहारों में फँसा रहता है। अंत में यमराज के बंधन में बँधा चला जाता है। निर्गुण की धारणा प्रबल होते हुए भी सिंगाजी ने यमराज की चेतावनी बार–बार दी है। आवागमन के बंधनों से मुक्ति का उपाय सुझाया है। अतः पुनर्जन्म में उनका विश्वास था। माया का उन्होंने निरंतर विरोध किया। उससे मुक्त होने का संदेश दिया। जीवन क्षणभंगुर है। वह काल का ग्रास है। एक दिन पुट्ट से खतम हो जाएगा। सारा पसारा यहीं रह जाएगा।

मत कर मनुआ दिला मिली।
आखिर चलना मुसाफिरी।।

सिंगाजी ने दोहा, चौपाई, और पदों के माध्यम से ही निर्गुण ब्रह्म को गाया है। सिंगाजी को साहित्यशास्त्र और छंदशास्त्र का ज्ञान नहीं था। गीतिकाव्य की सरस धारा उनके साहित्य में है, लेकिन यति, गति, लय, तुक आदि का शास्त्र–विधान के अनुसार प्रयोग नहीं मिलता। यही कारण है कि दोहे की एक पंक्ति में अर्थात् दो चरण में तो 24 मात्राएँ मिल जायेंगी, लेकिन जरूरी नहीं है कि उस दोहे की दूसरी पंक्ति में भी अर्थात् तीसरे व चौथे चरण में भी उतनी ही मात्रा हों। यही बात चौपाई के साथ भी लागू होती है और यही भजनों या पदों में भी। दोष बोध, सातवार, आदि में तो उन्होंने सीधे–सीधे गद्य वाक्यों में ही अपना संदेश दिया है। उनके काव्य की लम्बी यात्रा में लोगों ने भी (संतों, गायकों) अपनी तरफ से बहुत कुछ शब्द जोड़े–घटाये हैं। सिंगाजी का उद्देश्य शैली विशेष की खोज न होकर अपनी अनुभूति की सहज अभिव्यक्ति प्रमुख रही है।

सिंगाजी के काव्य की भाषा निमाड़ी है। आज से 450–500 वर्ष पूर्व सिंगाजी ने जिस निमाड़ी भाषा में अपनी बात को लयात्मक ढंग से कहा, भजनों के माध्यम से गाया, वह भाषा उस समय लिपिबद्ध कर ली गयी होती तो, उसके वास्तविक स्वरूप की पड़ताल की जा सकती थी। उनके भजन तब से लेकर आज तक पीढ़ी–दर–पीढ़ी वाचिक परपंरा में चले आ रहे हैं। मौखिक रूप से एक युग से दूसरे युग में ग्रहण कर गाये जाते रहे हैं। इस बीच भाषा की यात्रा आगे बढ़ी। निश्चित रूप में निमाड़ी के स्वरूप में भी बहुत अंतर आया। स्वभाविक है कि भजनों की भाषा के तब के और आज के रूप में भी अंतर होगा। यही कारण है कि उनके भजनों के अतिरिक्त, उपलब्ध लिपिबद्ध और मुद्रित काव्य की भाषा और इस संग्रह में सीधे लोगों के पास से संग्रहीत भजनों की भाषा में बहुत अंतर है। उनके पूर्व में लिपिबद्ध काव्य–दृढ़ उपदेश, वाणी, आदि की भाषा ठेठ निमाड़ी है तथा भजनों की भाषा पर खड़ी बोली का जबरदस्त प्रभाव है। आज गायक जन भी उनके भजनों को ज्यादातर खड़ी बोली में रूपान्तरित करके ही गाना पसंद करते हैं। परिणाम यह हुआ कि निमाड़ी के कई शब्द प्रचलन से बाहर हो गये। साथ ही कोई–कोई शब्द यात्रा में अभी भी, जस का तस है। उसका 500 वर्ष पूर्व के स्वरूप का अर्थ खोजना दुष्कर कार्य है। इसी तरह निमाड़ी भाषा की वाक्य संरचना एवं शब्द प्रयोग का ज्ञान भी जरूरी है। अतः सिंगाजी के साहित्य को ठीक–ठीक समझने के लिए निमाड़ी भाषा के शब्दकोश, व्याकरण और उसकी लोकधर्मी प्रवृत्ति का ज्ञान अपेक्षित है। सिंगाजी ने अपने सारे उपमान और प्रतीक सीधे–सीधे लोकजीवन और लोकव्यवहार से लिये हैं। सिंगाजी लोकभूमि पर खड़े होकर साहित्य के माध्यम से सृष्टि के सत्य तक पहुँचते हैं।

सिंगाजी के काव्य में जीवन के अबूझ रहस्यों का खुलासा हुआ है। संसार को जाना है। जीवन को समझा है। मनुष्य जन्म के उद्देश्य को पहचाना है। जीवन की भीतरी शक्ति से सीधे साक्षात्कार किया है। अनेक विध क्षेत्रों के बहुरंगी अनुभवों का हवाला देते सिंगाजी मनुष्य को उसके अंतिम लक्ष्य की ओर उन्मुख करते हैं। संयम, नियम, नीति और सदाचरण की बात वे मनुष्य जीवन के संदर्भ और उसके लक्ष्य के प्रति तो करते ही हैं, उसके साथ ही व्यक्ति के सामाजिक सरोकारों का भी तलस्पर्श करते हैं। व्यक्ति की मुक्ति की कामना वे समाज के व्यापक स्वस्थ संदर्भों में ही करते हैं।

इतने महत्त्वपूर्ण संत कवि का बहुत ईमानदारी से मूल्यांकन हो, इस उद्देश्य से इस संकलन के द्वारा उनके संपूर्ण लिखित एवं मौखिक उपलब्ध साहित्य को सामने लाने की भरसक कोशिश की है। सिंगाजी के साहित्य में बहुत संभावनाएँ हैं। उन्हें साहित्य जगत के समक्ष प्रस्तुत करना बेहद जरूरी है। इतने महत्त्पवूर्ण और लोकप्रिय कवि को अभी तक साहित्य में आदर और उचित स्थान नहीं मिला है। उम्मीद है कि इस साहित्य के माध्यम से सिंगाजी के अध्ययन की नई दिशाएँ खुलेंगी और इस जनकवि को साहित्य में उसका अपेक्षित स्थान मिल सकेगा।

मैंने संतों, भजन गायकों, समाधि स्थल के महंतों, कुछ वयोवृद्ध लोगों, गाँवों की भजन मंडलियों से संपर्क किया। मुझे इस प्रयास में 108 भजन प्राप्त हो सके हैं। इन्हें मैंने उनके केन्द्रीय भावों के आधार पर क्रमवार रखा है। जैसे–गुरु महिमा, मन को प्रबोधन, निर्गुण हठयोग एवं ध्यानयोग, जीवन की क्षणभंगुरता, स्व कथन, माता एवं अन्य परिजनों से बात–चीत आदि। इस संग्रह के लिए ग्राम जसवाड़ी के सर्व श्री बलिराम तिरोले एवं साथी, माथणी के देवराम खाण्डे एवं

मंडली, फेफरिया के श्री देवाजी परिहार (मेरे पिताजी) जयराम परिहार एवं साथी, जैतापुर के अनारसिंह साध, पांजरिया के कमलचंद मुहारे एवं साथी तथा मूंदी की सुश्री जीवनलता खेड़े एवं मंडली ने मुझे वर्षों की परम्परा से प्राप्त धरोहर में से सिंगाजी के पद उदारता से दिये, उनका मैं सदैव ऋणी रहूँगा। इस कार्य में भाई जयराम तथा मेरे दो छात्रों कुलदीप सिंहफरे एवं दुर्गेश जोशी ने मेरी मदद की, उन्हें धन्यवाद। बाबा गुलाबराव ने इस कार्य में मार्गदर्शन दिया। उनके प्रति नतमस्तक हूँ। भजनों के संग्रह की रूपरेखा और योजना में आत्मीय श्री वसंत निरगुणे का भी सहयोग रहा है। उनका हृदय से आभारी हूँ। तत्कालीन मध्यप्रदेश आदिवासी लोक कला परिषद् के सचिव डॉ. कपिल तिवारी एवं श्री अशोक मिश्र ने इसे सहर्ष प्रकाशित कर उपकार किया है। उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। जन संत कवि के साहित्य को जन–जन के पास से संग्रहीत कर विनम्र प्रयास द्वारा इस कृति के रूप में सहर्ष जन–जन को सौंप रहा हूँ।

– डॉ. श्रीराम परिहार

शरद पूर्णिमा (सिंगाजी मेला)
संवत 2074, दिनांक 5 अक्टूबर 2018

साखी

साँस–साँस पर हरि भजो, बिरथा साँस मत खोय।
ना जाणे या साँस को, आवणो होय न होय।। 1।।

साँझ पड़े गोपाल की, धेनु चले घर आय।
राधा धोये दोहनी, मोहन दूहे गाय।। 2।।

धन मूंदी धन परगणो, धन संतों का धाम।
सिंगाजी नऽ पावन कियो, नगर पीपल्यो ग्राम।। 3।।

चोर न चोरी कर सके, जुगल न चुगली खाय।
सिंगाजी के राज में, सिंह चराये गाय।। 4।।

फल टूटे जल में गिरे, खोज मिटे नहीं प्यास।
गुरु को तजे औरन को भजे, अंत ही नरक निवास।। 5।।

क्या कुएँ का बैठना, फूटी ठीकरी हाथ।
जा बैठो दरयाव में, मोती बाँधो गाँठ।। 6।।

संगी हमारे चले गये, हम भी चालण–हार।
कागज में कछु बाकी रही, तासे लागे वार।। 7।।

गुरुजी को प्रणाम करूँ, पल में कई–कई बार।
कौआ से हंसा किया, करत न लागी बार।। 8।।

संझा सुमरण आरती, भजन भरोसे दास।
मनसा वाचा करमणा, रहे न जम की त्रास।। 9।।

राम नाम निज मंत्र है, रटत प्रीति लगाय।
मंगल पर धीरज धरे, कोटि विघ्न टर जाय।। 10।।

मंगल मतो साधु को, सींचे निर्गुण बेल।
दीपक जलता गयब का, बिन बाती बिन तेल।।11।।

स्वांसा से सुमरण करो, जपी लेवो अजपा जाप।
परम पुरुष का ध्यान धरो, सोहम् आप ही आप।।12।।

कहता हूँ कही जात हूँ, क्या बजाऊ ढोल।
एक स्वास में जात है, तीन लोक का मोल।।13।।

हरिजन हंसा एक है, बगला कोट हजार।
हरिजन हंसा मोती चुगे, बग मछली चुग खाय।।14।।

हरिजन ऐसा चाहिए, जो निर्मोही होय।
निर्मोही होकर हरि भजे, संत कहावे सोय।। 15।।

भजन

म्हारा गुरु का चरण मऽ गंगा, कोई नहाई लेओ लूला अपंगा।।टेक।।
जोगी हुई न जटा बढ़ावऽ, बन–बन फिर ऽ ऊ नंगा।
माल खाई न देह फुलावऽ ,बणी रह्या लाल सुरंगा।।
इत संन्यासी उत वैरागी, तीरथ मऽ करी रह्या दंगा।
कहे जन सिंगो सुणो भाई साधो, तुम फिरी रह्या अपंगा।।

गुरु के चरणों की पवित्रता और उनकी शरण में मुक्ति की अवधारणा का सिंगाजी गंगा की पवित्रता और उद्धारक शक्ति से रूपक बाँधते हुए कहते हैं कि मेरे गुरु के चरण गंगा के समान पवित्र और मुक्तिदाता हैं। इसमें कोई लूला और अपंग व्यक्ति स्नान कर ले, तो भी उसका उद्धार हो जाए। गुरु की शरण में आकर अज्ञानी को भी ज्ञान और भ्रमित व्यक्ति को राह मिल जाती है। योगी बनकर जटा बढ़ायी जाती है और जंगल में नंगे घूमते हैं। माल खाकर, सुस्वाद और पौष्टिक भोजन कर शरीर को पुष्ट किया जाता है। काया का विस्तार किया जाता है और उसे लाल सुरंग अर्थात् अधिक रक्त वाला

बनाया जाता है। इधर संन्यासी और उधर वैरागी तीर्थ स्थानों में कभी पहले कुंभ स्नान के लिए, तो कभी मंदिर में पहले दर्शन के लिए दंगा करते हैं। सिंगाजी कहते हैं कि– तुम इस तरह अपंग होकर, भ्रमित होकर ही इधर–उधर घूम रहे हो। ईश्वर प्राप्ति का मार्ग तो गुरु ही बताएगा। उसी के पास उद्धार करने का मंत्र है।

सदा सरण सुख पाऊँ गुरुजी हऊँ, बहुरि न भव जळ आऊँ।।टेक।।
निद्रा आहार तज्यो म्हारा सामरथ, मूरति मऽ सूरति मिलाऊँ।
रैन दिवस छह सौ इक्कीस हजार, निष्फल एक नी खोऊँ।।
काम क्रोध मद लोभ पुराणा, इनकी नीव बहाऊँ।
माया की बेड़ी तोड़ो म्हारा सामरथ, यो मुख महिमा गाऊँ।।
तज्यो परिवार अरू छोड़ी चाकरी, अब तो दास कहाऊँ।
जसी पपैया अखंड धुन मांडऽ, ऐसो सबद सुणाऊँ।।
करुणा–सी नयना भर्‌या म्हारा सामरथ, लटी–लटी सीस नवाऊँ।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधौ, बिना देही, सी पुजाऊँ।।

गुरुजी! मैं आपकी शरण में सदा सुख पाता रहूँ। मुझे वह मंत्र दीजिए, साधना का मार्ग बताइए, जिससे कि मुझे पुनः संसार में न आना पड़े। मैंने निद्रा–आहार सब त्याग कर उस ब्रह्म की मूरत में अपना ध्यान लगाना चाहा है। रात–दिन चौबीस घंटे में चलने वाली इक्कीस हजार छः सौ श्वासों में से एक को भी निष्फल नहीं जाने दूँगा। प्रत्येक श्वास पर हरि भजूँगा। काम, क्रोध, मद और लोभ पुराने हैं अर्थात् जड़ जमाये है। जो हमेशा साथ रहते हैं, इनको जड़ मूल से (नीव) नष्ट कर दूँ। हे सतगुरु! मेरे जीवन से माया की बेड़ी को तोड़ दो, तेरी महिमा का मैं बखान करता रहूँगा। मैंने परिवार त्याग दिया। नौकरी छोड़ दी। अब मैं सिर्फ आपका दास कहाऊँगा। जिस प्रकार पपीहा अपने प्रिय बादल और स्वाति बूँद के लिए अखण्ड रट

लगाये रहता है, वैसे ही मैं हरि नाम की रट लगाये रहूँगा। करुणा से गुरुदेव मेरे नेत्र पनीले हो गये हैं। मैं तेरे चरणों में झुक–झुक कर शीश झुका रहा हूँ। सिंगाजी कहते हैं कि– मुझे वह मंत्र दीजिए कि मैं उस अशरीरी, अजन्मा, निर्गुण ब्रह्म की पूजा कर सकूँ। दूसरा अर्थ कि मेरी मृत्यु के बाद मेरा कोई निशान बाकी न रहे। मेरी कोई मूर्ति न रहे। संसार में मैं बिना देह का पुजाता रहूँ।

अबको जलम सुधारो गुरुजी, म्हारो अबको जलम सुधारो।
नहीं भूलूँ जस तुम्हारो गुरुजी, अबको जलम सुधारो।।टेक।।
गुरु बिन सहाय करे कोण जीव की, तीरथ करो हजारों।
पति बिन सोभा काई तिरिया की, काई विधवा को सिनगारो।।
घड़ी दुई घड़ी हाऊँ करूँ हूँ विनती, बेगि ते सुणों हो पुकारो।
आप गुरुजी म्हारा परउपकारी, अवगुण चित मत धारो।।
गुरु बिन ज्ञान ध्यान सब फोकट, फोकट नेम अचारो।
बैकुंठ स रे पाछा फिरी आया, सुकदेव नारद प्यारो।।
राम मिलन की राह बताओ, मत मेटो मन म्हारो।
कहे जन सिंगा सुणो रे, गुरुदेवा, सिर पर पंजो तुम्हारो।।

गुरुजी मेरा इस बार का जन्म सुधार दो, मैं तुम्हारा यश (उपकार) कभी नहीं भूलूँगा। गुरु के बिना जीव की सहायता कौन करे, भले ही हजारों तीर्थ कर लो। जिस तरह पति के बिना स्त्री की शोभा नहीं है, विधवा को शृंगार शोभा नहीं देता, उसी प्रकार जीव की भी गुरु के उपदेश के बिना और ब्रह्म ज्ञान के बिना शोभा नहीं है। मैं हर समय आपकी विनती करता हूँ, मेरी विनती शीघ्र ही सुनो। हे गुरुजी! मेरे अवगुण चित में धारण न करो और मेरे पर उपकार करो। गुरु के बिना ज्ञान–ध्यान सब व्यर्थ है और हजारों नियम–धरम भी व्यर्थ हैं। सुकदेव और नारद भी वैकुण्ठ से वापस लौट आये। हे गुरु!

मेरी मन पसन्द राम से मिलने की राह बताओ। सिंगाजी कहते हैं कि– हे गुरुजी! मुझे दर्शन दो और मेरे सिर पर अपना आशीर्वाद से पूर्ण हाथ धरो। मुझ पर कृपा करो।

गुरु मैं तो तुम्हारो दास, तुम राखो चरण का पास।। टेक।।
सबहि तज सरणागत आयो, करो ज्ञान प्रकाश।
खोलो किवाड़ी उसी जगह की, जहाँ नहीं मोह को वास।।
जिस जगह सूरज नहीं तारा, नहीं पवन प्रकास।
धूप–छाँव जहाँ कछु नहीं लागे, जहाँ नहीं भूख और प्यास।।
झिरमिर–झिरमिर मेवलो बरसे, आनन्द को जहाँ वास।
निज रूप का दर्शन पावाँ, जहाँ ब्रह्म जोत प्रकास।।
इतनी किरपा करो गुरुजी, ताबेदार हूँ दास।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधौ, मोहे पूरण भयो विश्वास।।

गुरु मैं तो तुम्हारा सेवक हूँ, मुझे अपने चरणों के पास ही रखिए। मैं सब कुछ छोड़कर शरण में आया हूँ, मुझमें ज्ञान का प्रकाश कीजिए। जहाँ मोह–माया का निवास नहीं है, उसी जगह की किवड़िया खोलिए। जहाँ सूर्य, तारा, पवन, प्रकाश, धूप, छाँह कुछ नहीं है तथा जहाँ भूख और प्यास कुछ नहीं लगती है। विरक्त होने के बाद और प्राणायाम क्रिया के दौरान की स्थिति का उक्त चित्रण है। जहाँ रिमझिम पानी बरसता रहता है और जहाँ आनन्दावस्था है। जहाँ ब्रह्म की ज्योति प्रकाशित है। उसी जगह अपने स्वरूप का दर्शन पाते हैं। जीव अपने वास्तविक स्वरूप ब्रह्म का दर्शन करता है। सिंगाजी कहते हैं कि–गुरुजी मुझ पर कृपा कीजिए मैं आपका ताबेदार हूँ, सतर्क सेवक हूँ। मुझे आप पर पूर्ण विश्वास है।

गुरुजी बिन, मारग कौन बताये।। टेक।।
दूर को जाना रहे अहंकारी, मारग नजर न आये।

सीधे मारग पर पाँव धरयो, मारग वोही बताये।।
नदिया गहरी जल डुबाये, नीर बहता जाये।
गुरु कृपा से पकड़ बुलाये, वोही पार लगाये।।
मेरा–मेरा मत कर, इस बस्ती में रहन न पाये।
कहे जन सिंगा सुनो भई साधो, राम नाम गुण गाये।।

गुरु के बिना रास्ता कौन बताये। ब्रह्म तक जाने का रास्ता लंबा है। साधना का मार्ग कठिन है। यदि व्यक्ति अहंकारी बनकर उस पर चलेगा तो मार्ग नहीं सूझेगा। सीधे रास्ते पर पाँव रखकर चलने से सही लक्ष्य तक पहुँचा जा सकता है। गहरी नदिया हैं, उसमें जल व्यक्ति को डुबो देता है। उनमें पानी निरंतर बहता रहता है। अर्थात् कर्मेन्द्रियाँ रुपी नदियों में विषय वासनाओं का जल बह रहा है और व्यक्ति उसमें डूब जाता है। गुरु अपनी कृपा से पकड़ लेता है। अपने पास बुला लेता है। और डूबने से वही बचा सकता है। मेरा–मेरा मत करो। इस संसार की बस्ती में रह नहीं पाओगे। सिंगाजी कहते हैं कि– इसलिए राम नाम का गुणगान करो, उसी से उद्धार होगा।

सतगुरु सबदा हेरी, तुम देखो दरियाव की लहरी।। टेक।।
इस दरियाव में बाजा बाजै, बाजे आठों पहरी।
ताल पखावज बजै झांझरी, जहाँ वंशी बाजै गहरी।।
इस दरियाव में सात समुन्दर, बीच गयब की डेरी।
डेरी अन्दर अलख विराजे, वहाँ सुरता लग रही मेरी।।
बिना पीड़ का बीरछ कहिए, डाल गयी चहुँ फेरी।
पान फूल वाको कछु नहीं देख्यो, जहाँ छाया रहती गहरी।।
अगम अगोचर अनुभव ठाड़ी, अब क्या पूछे मेरी।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधौ, निर्भय माला फेरी।।

जहाँ सतगुरु सोहम को देख रहे हैं, कोई उस दरियाव सबद (समुद्र) की लहरों को देखे। इस दरियाव में आठों पहर (दिन–रात) बाजा बजते रहते हैं। वहाँ ताल, पखावज, झाँझ बजती रहती है और गहरी वंशी बजती रहती है। अर्थात् जहाँ अनाहत नाद सुनाई देता है, उस नाद में इतने प्रकार के वाद यंत्रों की ध्वनियाँ मिली–सी सुनाई देती हैं। इस दरियाव में सात समुद्र हैं और बीच में शून्य का डेरा है। उसी डेरा में (जगह) अलख विराज रहा है, सिंगाजी कहते हैं– मेरी सुरती (ध्यान) वहीं लग रही है। एक बिना पेड़ (तना) का वृक्ष है, उसकी शाखाएँ चारों ओर फैली हुई हैं। यह पेड़ वह निरंजन ब्रह्म है, जिसकी महिमा सब ओर विस्तारित है। उस पेड़ में पत्ते फूल कुछ नहीं हैं, फिर भी उसकी छाया सघन है। यह अगम अगोचर अनुभव से ही प्राप्त किया जा सकता है, जो कुछ अनुभव मुझे प्राप्त हुआ है, उसके बारे में कुछ पूछने पर शब्दों में कुछ नहीं कहा जा सकता है। सिंगाजी कहते हैं कि– हे संतों! मैं तो निर्भय होकर उसी निरंजन की माला फेर रहा हूँ। ध्यान कर रहा हूँ।

सतगुरु हम पर दया करो, विधि देवो बताई
जीव ब्रह्म कैसा हुआ, कासो पूछो जाई।। टेक।।
पवन डोर जीव संचरो, जल सिरजी काया।।
जा घर से जीव आइया, तुम हमको लखाया।
दक्षिण पश्चिम उत्तरा, पूरब फिरी आया।।
दिव्य दृष्टि से देख्या नहीं, जासे भरमाया।
दस दरवाजा प्रगट है, चारों कुलप लगाया।
दो दरवाजा खुल गया, हंसा सुख पाया।।
सतगुरु केवल सँग ले, जाने थाह बताया।
कुआ को जल सागर मिल्यो, जब मारग पाया।।

कहे सिंगाजी साईं पातलो, जाके रूप न रेखा।
आवत जात लखा नहीं, भारी अचरज पेखा।।

सतगुरु! हमारे ऊपर दया करके ब्रह्म को बता दीजिए। उसे प्राप्त करने का साधना मार्ग निर्दिष्ट कीजिए। यह जीव ब्रह्म किस प्रकार हो सकता है, यह किससे जाकर पूछूँ? पवन के आधार पर यह जीव संचरण कर रहा है अर्थात् श्वास के बल पर यह गतिमय है। जल से शरीर का सर्जन हुआ है। जिस घर से जीव आया है, तुम हमें वह स्थान (घर) बताओ। चारों दिशा में घूम आया, दिव्य दृष्टि उत्पन्न नहीं हुई, उससे भ्रमवश घूमता रहा। दस दरवाजा (शरीर में दस दरवाजे हैं नाक, कान, आँख आदि) प्रकट हैं, उनमें चारों ताले लगे हैं। उसमें दो दरवाजे खुल गये (कुण्डलिनी जागृत होकर मूलाधार चक्र–जिसमें दो पाँखुड़ी हैं में प्रवेश करते हुए, षटचक्रों को पारकर ब्रह्मरंध्र तक पहुँचती है।) जिससे जीव को सुख मिला। सतगुरु ने संग रखकर उस समुद्र की थाह बतायी। कुएँ का जल सागर में जाकर मिल गया अर्थात् जीव ब्रह्म में जाकर मिल गया, तब मार्ग (मुक्ति) पाया। सिंगाजी कहते हैं कि–स्वामी (ईश्वर) बहुत पतला है, उसका न रूप है न रेखा है उसे आते–जाते भी नहीं देखा जाता, यही बड़े आश्चर्य का विषय है।

तुम बिन मेरे और न दूजा, गुरुजी सरण तेरी हू जी।। टेक।।
जब हम तुमरी संगत कीन्ही, तब तुम पकड़ी बाही।
घट–घट में तुम रखवारे, जब सुमरुँ तब माहीं।।
तुमरी संगत हम सुख पाया, जरी हिरदे की काई।
दुविधा दुरमत दूर करी, घट–घट रह्या समाई।।
अबके गुरुजी सरण राखो, ये ही परण है म्हारो।
भूल–चूक की राह लगाओ, दूर करो मत्सर म्हारो।।

भगत वत्सल विरद कहायो, अबकी न लैहों घानी।
कह जन सिंगा सुनो भाई साधो, तत्व ब्रह्म पहचानी।।

गुरुजी तुम्हारे बिना मेरा और कोई दूसरा सहारा नहीं है। मैं तेरी शरण में हूँ। जब हमने तुम्हारा सान्निध्य पाया, तब तुमने हमारी बाँह पकड़ी, सहारा दिया। घट–घट के तुम रखवारे हो, जब भी तुम्हारा स्मरण करूँ, तब तुम मेरे भीतर ही मौजूद महसूस होते हो। तुम्हारे सान्निध्य में हमको सुख प्राप्त हुआ। हृदय की काई जल गयी। सब विकार नष्ट हो गये। दुविधा और दुर्मति दूर हो गयी। घट में ईश्वर की अनुभूति समा गयी है। अबकी बार गुरुजी आपकी शरण में आया हूँ, बिना दीक्षा के वापस नहीं जाऊँगा, ये मेरा संकल्प है। भूल–चूक को क्षमा कर राह बताओ तथा जीवन से मत्सर को समाप्त कर दो। तुम तो भक्त वत्सल हो और दुखियों के उद्धारक कहलाते हो, अबकी बार (इस जन्म में) में घानी नहीं लूँगा अर्थात् घानी (कोल्हू) के बैल जैसा चक्कर नहीं लगाता रहूँगा। सिंगाजी कहते हैं–हे साधु! सुनो, गुरु की शरण में आने पर ही ब्रह्म तत्त्व की पहचान होती है। वही दृष्टि देता है।

गुरु म्हारा अहिलो जनम गयो, नहीं मुख राम कह्यो। टेक।।
एक पण खोयो, दूजो पण खोयो, तीजा म शरण आयो।
वन खण्ड माही गऊ भैंस चराई, जंगल वास कियो।।
गुरु ब्रह्मा गुरु विष्णु समाना, नैनन नीर बह्यो।
नैन खोल गुरु रूप निहारूँ, गदगद कंठ भयो।।
गोद उठाय लियो मनरंगा, मस्तक हाथ दियो।
कहे जन सिंगा गुरु की महिमा, भव जल पार कियो।।

सिंगाजी कहते हैं– गुरुजी मेरा जन्म व्यर्थ गया। मैंने मुख से राम नहीं कहा। हरि का नाम स्मरण नहीं किया। मेरा एक पण यानी

एक अवस्था चली गयी। दूसरी भी चली गयी। तीसरे पण में मैं आपकी शरण आया हूँ। मैंने वनखंडों में गाय भैंस चरायी। जंगल में निवास किया। गुरु ब्रह्मा और विष्णु के समान हैं, मेरे नेत्रों से नीर झर रहा है। जब मैंने नेत्र खोलकर गुरु का रूप निहारा, मेरा कंठ गदगद हो गया। गुरु मनरंग ने गोद में उठाकर मस्तक पर हाथ रख दिया, कृपा कर शिष्य बना लिया। इस तरह गुरु ने अपनी महिमा से, अपने द्वारा प्रदत्त ज्ञान से संसार सागर से पार कर दिया।

विशेष : पण यानी अवस्था। मनुष्य जीवन की चार अवस्था–बाल्यावस्था, युवावस्था, प्रौढ़ावस्था और वृद्धावस्था होती है।।

मार्‌या बाण कसी, सतगुरु मार्‌या बाण कसी।। टेक।।
अन्न नहीं भावे, नींद नहीं आवे, तन पर विपत कसी।
तन का घाव नजर नहीं आवे, कहाँ लगाऊ दवा घसी।।
छुरी नहीं मारी, कटारी नहीं मारी, सबद की फल धँसी।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधो, मनरंग भाल धसी।।

सतगुरु ने कसकर बाण मारा। सतगुरु ने गुरुमंत्र (ज्ञान) का बाण जबसे कसकर मारा है, तब से अन्न अच्छा नहीं लग रहा है। नींद नहीं आ रही है। शरीर पर विपत्ति कसती जा रही है। शरीर पर घाव दिखायी नहीं दे रहा है, अतः दवा घिसकर कहाँ लगाऊँ। कुछ समझ में नहीं आ रहा। गुरु ने छुरी नहीं मारी। कटारी भी नहीं मारी। परन्तु गुरु शब्द (मंत्र) की फाल (नुकीला भाग) भीतर तक धँस गयी है। सिंगाजी कहते हैं कि– गुरु मनरंग ने मस्तक पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया है। गुरु मंत्र देकर ज्ञान का दीपक जलाया है।

फल नजीक नज़र नहीं आवे, सदगुरु बिन कोण बतावे।। टेक।।
बिना पाल को सरवर कहिए, लहेर उलट कर आवे।
बिना चोंच को हंसा कहिए, मोती चुग–चुग खावे।।

बिना मूल को वृक्ष कहिए, डाल नवी–नवी जावे।
बिना पंखा को हंसा कहिए, आकास उड़ि–उड़ि जावे।।
बिना पत्र को बेल कहिए, छाँव नजर नहीं आवे।
बिना फूल का फल लागा, साधु जन कोई खावे।।
उलट ज्ञान कोई बिरला बूझे, और न बूझण पावे।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधो, चौरासी छूट जावे।।

फल पास दिखायी नहीं देता। वह ब्रह्म नजदीक दिखायी नहीं देता है। उसे सतगुरु के सिवाय कौन बता सकता है? एक बिना पाल का सरोवर है। उसमें लहरें उलटकर आती हैं। उस सरोवर में बिना चोंच का हंसा (जीव) मोती (अमृत) चुग–चुग कर जाता है। साधना के मार्ग पर चलते हुए जीव जब ब्रह्मरंध्र से टपकते अमृत को पान करने की स्थिति में पहुँच जाता है, तब की स्थिति को ही हंसा द्वारा मोती चुगने की दशा कहा गया है। उस ब्रह्म को वृक्ष कल्पित करते हुए कहा गया है कि एक बिना जड़ों वाला वृक्ष है, जिसकी शाखाएँ वजन में झुकी–झुकी हैं। एक बिना पंख का हंसा है, जो आकाश में उड़–उड़ जाता है। कुण्डलिनी ही हंसा है और मस्तिष्क में बना ब्रह्माण्ड ही आकाश है। कुण्डलिनी की ब्रह्मरंध्र तक की यात्रा ही हंसा का आकाश में उड़ना है। बिना पत्ते की एक लता है, जिसकी छाँव नजर नहीं आती। वह ब्रह्म की लता है, जिसकी महिमा सारे संसार में व्याप्त है, परन्तु छाया दिखाई नहीं देती। एक बिना फूल का फल लगा है, जिसे कोई साधु पुरुष ही खाता है। ब्रह्मांड में ब्रह्म ही फल है, जिसको कोई साधक ही प्राप्त करता है। इस अनबूझ ज्ञान को कोई बिरला ही बूझ सकता है और कोई दूसरा नहीं समझ सकता। सिंगाजी कहते हैं कि– जो ज्ञान की उस गाँठ को खोल लेता है, वह चौरासी लाख योनियों के चक्कर से और संसार की चौरासी (परेशानियों) से मुक्त हो जाता है।

बिन सतगुरु पहिचाण, म्हारो दिल नहीं माने, नहीं माने।।टेक।।
आतम तंत भेद नहीं जाणे, फोकट तके विराणा।
जो घट भीतर साहेब बसे हैं, वाको नहीं पहिचाणा।।
न्होवे धोवे तिलक लगावे, बाचे वेद–पुराणा।
आपही गावे लोग रिझावे, झूठी तड़े टाणा।।
तीरथ बरत और करे पारथेसर, पूजे देवी–देवा।
ये देवा तेरे काम नी आवे, झूठी मांडी सेवा।।
सकल भरमणा छोड़ो बंदे, आसी झूठी आसा।
सतगुरु सिंगा वचन सुणी न, मुखड़ो हुयो उदासा।।

बिना सतगुरु के मार्ग बताये, ऐसी बतलायी गयी पहचान या दी गयी जानकारी को मेरा मन नहीं मानता। अर्थात् ईश्वर के विषय में जो गुरु जानकारी देता है और मार्ग बताता है वह ही सही जानकारी है। मनुष्य आत्म तत्त्व का भेद नहीं जानता और इधर–उधर घूमता रहता है। जिस हृदय के भीतर ब्रह्म का निवास है, उसको पहचान नहीं पाता। वह बाहरी तमाम कर्मकांड करता रहता है। स्नान–ध्यान करके तिलक लगाता है। वेद पुराण बाँचता है। खुद गाकर लोगों को रिझाता है और व्यर्थ के ईश्वर प्राप्ति हेतु उपाय किया करता है। तीर्थ करता है। स्नान ध्यान करके तिलक लगाता है। वेद पुराण बाँचता है। खुद गाकर लोगों को रिझाता है और ईश्वर प्राप्ति हेतु व्यर्थ के उपाय किया करता है। तीर्थ करता है, व्रत करता है। पारथेश्वर परमेश्वर की पूजा करता है। झूठे देवी–देवता पूजता है। ये देवता काम नहीं आते हैं। इनकी सेवा व्यर्थ में ही की जाती है। सारी व्यर्थ की दौड़–धूप छोड दो। संसार के सुखों की आशा व्यर्थ है। सिंगाजी कहते हैं कि–सतगुरु का वचन सुनकर मुख उदास हो गया। संसार से मन उचट गया।

अवगुण बहुत कियो, गुरुजी मनऽ अवगुण बहुत कियो।।टेक।
नित उठी पाँय ज़मीन पर धरियों, कई एक जीव मार्‌यो।
नव मास माता गरभ में राख्यो, बहुतक दुःख दियो।।
वाट चलन्ती तिरिया निरखी, मनसा पाप कियो।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधौ, गुरु का चरण छियो।।

सतगुरु मैंने जीवन में बहुत अवगुण अर्थात् बुरे कार्य किये। बहुत पाप किये। रोज उठकर ज़मीन पर पाँव उखते ही कई जीवों का नाश किया। नौ महिने तक माता के गर्भ में रहा और उसे बहुत दुःख दिया। रास्ते पर चलते हुए परायी स्त्री को देखा। मन में अनेक (मनसा) पाप किये। सिंगाजी कहते हैं कि–यह सब जानकर, विचारकर इनके बचाव के लिए मैंने गुरु के चरण पकड़ लिये। मैं गुरु की शरण में आ गया।

माँगी भीख मोहे दीजो, गुरुजी जग में जस लीजो।।टेक।।
लाऊँ धन माल करु अरपण, चाहे सो भाव लीजो।
बाँट पकड़ी बंधु गयो रे, छुड़ाई जब राजा धुजो।।
जब गुरु घर अवतार बतायो, तब जाई आप सूझो।
मत समझ धन गाँव हमारा, गुरु का चरण ख पूजो।
कहे जन सिंगा बंधु तज आसा, जाय पयाना कीजो।।

गुरुजी मैं तुमसे भीख माँग रहा हूँ। भीख में मुझे गुरु मंत्र दीजिए। ज्ञान दीजिए और दुनिया में अपना यश कर लीजिए। ज्ञान दीजिए, ताकि संसार में आपकी कीर्ति और फैल सके। मैं अपने जीवन का सारा धन, माल लाकर तुझे अर्पण कर देता हूँ, उसे आप चाहे जिस भाव से लें मैं तो स्वयं को अर्पण कर देता हूँ। बाँट पकड़कर भाई चला गया अर्थात् सगे संबंधी भी अन्त समय काम नहीं आते। जब तक गुरु राह नहीं बताता, तब तक आप (स्वयं का रूप)

नहीं सूझता। ब्रह्म दिखाई नहीं देता। इसलिए सिंगाजी कहते हैं– धन दौलत, गाँव, घर को अपना मत समझों, ये सब झूठे हैं। गुरु के चरणों की वंदना करो और सभी आशाओं को त्यागकर निर्गुण ब्रह्म की ओर पयान (प्रयाण) कीजिए।

गुरु मैं संसार को सुख भरिपाई, नाहक भरमणा खाई।।टेक।।
किनका लड़का न किनका भर्तार, कितराक दिन की सगाई।
कूण की कन्या बहिन भानजी, कूण, कूणको जमाई।।
माता–पिता न जनम दियो है, करम सँगाती न कोई।
कर्म भाग फल पाइया, जिनने रेखा है बतलाई।।
यो संसार ओस का मोती, पवन लगे धुल जाई।
जब लगि काया, तब लगि माया, अबला ढुलमुल रोई।।
तुमही मायरो तुम ही सासरो, तुम ही समरथ भाई।
तुम ही मात–पिता गुरुदेवा, दीनो ब्रह्म लखाई।।
नित का आना न नित का जाना, गर्भवास दुःख होई।
कहे जन सिंगा सुनोभाई साधौ, तुम समझो सोना बाई।।

गुरु मैंने संसार का सुख प्राप्त कर लिया। मैं अभी तक व्यर्थ ही भ्रमित होता रहा। किसका लड़का और किसका पति? यह सब कितने दिनों का रिश्ता है? किसकी कन्या, बहन, भांजी और कौन किसका जँवाई है? अर्थात् ये सब सम्बन्ध झूठे हैं। माता–पिता ने जन्म दिया है। परन्तु इनमें से कोई कर्म का साथी नहीं रहता। व्यक्ति को कर्म के हिस्से का फल पाना होता है। कर्म की रेखा ऐसा कहती है। यह संसार ओस बिन्दु के समान है, जो हवा चलते ही ढुलक जाता है। जब तक शरीर है, तब तक ही माया है, शरीर के जाने के वक्त स्त्री ढुलमुल (बिलखकर) रोती है। हे गुरुदेव! मेरा तुम ही मायका हो तुम ही ससुराल हो। तुम ही समर्थ भाई हो, तुम ही

माता– पिता और गुरुदेवा हो। तुमने मुझे ब्रह्म के दर्शन कराये। मार्ग बताया। सिंगाजी कहते हैं कि–संसार में आने–जाने में और गर्भवास में जीवन को बहुत दुःख होता है। हे सोनाबई! तुम इस बात को समझो।

विशेष : यह पद सोनाबाई को उपदेश के रूप में कहा गया है।

गुरु अबकी शरण मोहि राखियों, तुम बिन पल न सुहाय।।टेक।।
उत्पत्ति प्रलय आनन्द करना, करना है कई बार।
मन व्यापारी सौदा करले, पूँजी पूरण सार।।
पाँच पच्चीस बरधा करले, गुरु गौवी तू लाद।
ज्यो मन मरना सोच न करना, मरना है एक बार।
कहे जन सिंगा साहब मेरा, पूरण तत्व दिखाव।।

गुरु! अबकी बार मुझे शरण में रख लो, तुम्हारे बिना मुझे पल भर भी अच्छा नहीं लगता। उत्पत्ति और प्रलय के पार जाकर आनन्द प्राप्त करना है। मन व्यापारी राम नाम का सौदा कर ले, तेरे पास पूर्ण ब्रह्म रूपी पूँजी है। पाँच पच्चीस की तू खरीददारी कर ले और माल से भरी हुई गोनी अर्थात् बोरियाँ तू लाद ले। मन सत्य अर्थात् बार–बार मरने की कभी सोच नहीं करना, क्योंकि आखिर मरना तो एक बार ही होता है। सिंगाजी कहते हैं– सतगुरु कृपाकर मुझे इस पूर्ण तत्त्व को दिखाइए। इसका पूरा ज्ञान दीजिए।

खूब बिचारी सलाह सिंगाजी अकेला।। टेक।।
पाँच हथियार कसकर बाँधे, लसकर खोजन चला।
सयानी घोड़ी पर जीन कसी न, भामगढ़ से चला।।
पाँच फेरा परकम्मा दीना, गुरु मनरंग का चेला।।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधो, गुरु की गोद में झूला।।

सिंगाजी ने खूब सोच विचारकर अकेले ही यात्रा पर (जीवन यात्रा) चलना तय किया। पाँच हथियार कसकर बाँधे और वह लश्कर खोजने निकला है। अर्थात् पाँचों इंद्रियों को संयम से वश में कर अन्य विकारों को नष्ट करने निकल पड़ा है। स्याणी घोड़ी पर जीन कसकर वह भामगढ़ से चला और रास्ते में गुरु मनरंगगीर के मिलने पर उनकी पाँच फेरा कर परिक्रमा की। सिंगाजी कहते हैं कि–इस प्रकार वह गुरु की गोद में जाकर झूला। गुरु की शरण में गया।

गुरु को सबद हम जाणा राणाजी, नहीं दूजो पहिचाना।।टेक।।
गुरु देवन म देव बड़ो है, कहाँ तक करू बखाना।
गुरु मनरंग ने ग्यान दियो है, नारद मिली गयो स्थाना।।
तार लिया रैदास कबीर, ध्रुव प्रहलाद उबार्या।
बाई मीरा सवा घर मिलिया, साचो लगई लियो आना।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधो, पार न पायो राना।।

हे राजा! हम गुरु के शब्द के अतिरिक्त और अन्य को नहीं पहचानते। सिंगाजी को जब गुरु द्वारा ज्ञान प्राप्त हुआ था तब वे भामगढ़ के राजा राव लखमें सिंह के यहाँ नौकरी करते थे। तब वे राजा से यह कहते हैं। हम केवल गुरु मंत्र को जानते हैं और किसी से अब वास्ता नहीं है। गुरुदेव सब देवों से बड़े हैं, इसका मैं कहाँ तक बखान करूँ। गुरु मनरंगगीर ने ज्ञान दिया है। नारद जैसे भक्त को भी गुरु से ही ज्ञान प्राप्त हुआ था। रैदास, कबीर, ध्रुव और प्रहलाद को गुरु ने ही तारा है। ज्ञान मार्ग बताया है। मीराबाई को इस संसार के अतिरिक्त दूसरा घर (ईश्वर) गुरु के कारण ही मिला, जिससे उन्होंने सच्चा सम्बन्ध जोड़ा। सिंगाजी कहते हैं कि– राजा गुरु की महिमा का पार नहीं पाया जा सकता।

सदा मन आनन्द भज ले हरी, ऐसो जनम न आवे फिरी।।टेक।।
चार लाख चौरासी भरमों, जब नर देही धरी।
या देही में सुमरन करले, सोई बात है खरी।।
वा दिन की सुध भूल गयो रे, रह्यों उर्ध मुख झूली।
त्राहि–त्राहि करता घट भीतर, दस अँगुली मुख धरी।।
गर्भवास से बाहर आया, पायी आनन्द घड़ी।
जो माँगा सो दिया गुरु ने, तब भी न मन्सा भरी।।
कर से तू धन्धा कर ले, पग से पन्था करी।
रसना नाम सुमरले बंदे, फिर न आवे घड़ी।।
जागत–सोवत उठत–बैठत, राम सुमर हर घड़ी।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधो, इस विध जाएगा तरी।।

हे मन ! तू सदा आनन्द में रहकर हरि का भजन कर, क्योंकि ऐसा जन्म तुझे दुबारा नहीं मिलेगा। चौरासी लाख योनियों में भटकने के बाद मनुष्य ने देह धारण की है, इस दुर्लभ देही में हरि नाम का स्मरण कर ले, यह खरी बात है। हे मन! तू उस दिन की बात भूल गया, जिस दिन माता के गर्भ में औंधे मुँह लटका था। गर्भ में त्राहि–त्राहि कर रहा था और दसो अँगुलियाँ तेरे मुँह में रखी हुई थी। गर्भ से जैसे ही तू बाहर आया, तो आनन्द मनाया गया। जो माँगा वह गुरु ने दिया तब भी तेरी इच्छा पूर्ण नहीं हुई। हे मन! तू हाथों से धंधा कर ले और पाँवों से यात्राएँ कर ले। जीभ से ईश्वर का नाम सुमर ले। फिर ऐसा अवसर नहीं मिलेगा। जागते–सोते, उठते–बैठते तू हर क्षण राम स्मरण कर ले। सिंगाजी कहते हैं कि– इस तरीके से तेरा उद्धार हो जाएगा। तू संसार सागर से तर जाएगा।

मनुआ राम सुमर ले रे, नहीं तो रोकेगो जनधणी।। टेक।।
साधु की वाणी सदा सुहाणी, ज्यों झिरिया का पाणी।
खोजत–खोजत खोज लियो रे, कई हीरा कई कणी।।
चुन–चुन कंकड़ महल बनाया, उसमें भँवर लुभाणी।
आया इसारा, गया पसारा, झूठी अपनी माणी।।
राम नाम की लूट कर बंदे, गठरी बाँधो ताणी।
भवसागर से पार उतर जा, नहीं जाय नरक की खाणी।।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधो, यो पद हे निरबाणी।
यादपद की कोई करो खोजना, गुरु कह गये अमृत वाणी।

हे मन! तू राम का स्मरण कर ले, अन्यथा यमराज तुझे रोकेगा अर्थात् तुझे मोक्ष नहीं मिलेगा। साधु की वाणी हमेशा सुहावनी होती है। कल्याणकारी होती है। वह झीरी के पानी की तरह शीतल और सुनने में मीठी होती है। निर्गुण ब्रह्म को खोज पाना कठिन है, लेकिन राम नाम का स्मरण करते हुए सन्तों ने उस ब्रह्म रूपी हीरे की कनी को खोजा है। मनुष्य इस संसार में माया के भ्रमजाल में फँसकर दुखित होता रहता है और उसे ही सच्चा सुख मानते हुए उसमें फँसा रहता है। ईंट पत्थर चुन–चुनकर वह महल बनाता है, उसमें जल की भँवर की भाँति घूमा करता है, उलझा रहता है। लेकिन जैसे ही मृत्यु का संकेत आता है, उसके द्वारा विस्तारित यह संसार धरा रह जाता है। माया का यह प्रसार झूठा साबित होता है। इसलिए हे मन! तू राम नाम की लूट कर और जीवन की गठरी को तानकर, कसकर बाँध ले तथा संसार सागर से पार उतर जा, अन्यथा राम नाम स्मरण के अभाव में नरक की खान में जाना पड़ेगा। सिंगाजी कहते हैं कि– हे साधु जनों! यह पद निरबानी है। यह मंत्र उस निर्गुण ब्रह्म को पाने के लिए आधार है, इसकी खोज कीजिए, गुरु ऐसी अमृतवाणी कह गये हैं।

जप ले रे हरि नाम मन मूरख, जप ले रे हरि नाम।
नाम लिये बिना मुक्ति न होवे, जनम चल्यो रे हैवान।।टेक।।
क्या तू लाया, क्या ले जाएगा, क्यों करता है गुमान।
याही गुमान में सब जग भूला, सीख गुरु की मान।।
कौड़ी–कौड़ी माया जोड़ी, जोड़ धरी एक ठाँव।
चलने की बिरियाँ संग न चाली, माया याको नाम।।
धन चाहे तो धरम कर लो, मुक्ति चाहो भजो राम।
संकट पड़े प्राणी दोहला, अवसर आवे काम।।
हाल दीवाना कोई माल दीवाना, जीवन दीवाना गुलाम।
कहे जन सिंगा हम नाम दीवाना, पाया सतगुरु धाम।।

हे मूर्ख मन! तू हरि का नाम जप ले। नाम स्मरण के बिना मुक्ति नहीं मिलती। यह जनम तेरा धीरे–धीरे समाप्त हो चला है। तू क्या लेकर आया है और क्या लेकर जाएगा? क्यों घमंड करता है। तू इसी गुमान में सब संसार को भूल बैठा है, अर्थात् तू किसी को कुछ नहीं समझता। हे मन! तू गुरु की सीख मानकर हरि भजन कर। तूने कौड़ी–कौड़ी माया जोड़ी और जोड़कर एक स्थान पर इकट्ठी की। तेरे द्वारा एकत्रित की गयी यह धन–दौलत तेरे चलने की बेला अर्थात् मृत्यु के समय में कुछ काम नहीं आती है। इसी का नाम माया है। तू यदि धन चाहता है, तो धर्म कर और मुक्ति चाहता है, तो राम नाम का स्मरण कर, ताकि जब गहरा संकट पड़े तो तेरे द्वारा किया गया राम नाम स्मरण काम आ सके। कोई अपनी स्थिति पर दीवाना है, कोई धन दौलत पर दीवाना है और कोई जीवन का दीवाना होकर गुलाम–सा जीवन जी रहा है। सिंगाजी कहते हैं कि–वे हरि नाम के दीवाने हैं और उन्होंने सतगुरु का धाम पा लिया है।

आवागमन मत कीजे रे मन म्हारा, फिरी जनम मत लीजे।।टेक।।
खारा जो खाय–खाय सारा जो मरिया, मच्छी को मेणों मत कीजै।

ओछो जल तलफ कर मरियो, जाय सरोवर घर कीजै।।
एक साहूकार अनेक वैपारी, नेकी को सौदो कीजै।
जिसका खाणा रजू हुई दीजै, भूल कभी मत कीजै।।
तत्व पलंग पर सेज बिछौणा, सुन्न म डेरा दीजै।
चाँद–सूरज जहाँ तपै अवलिया, जहाँ जाय झण्डा दीजै।।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधौ, सतगुरु बिन मत रहिजे।
दई परकम्मा पाँव लगी लीजै, ज्ञान धोळी–धोळी पीजे।।

हे मेरे मन ! तू कुछ ऐसा उपाय कर कि तेरा आवागमन मिट जाये। तू फिर से जन्म मत लेना। यह संसार खारे पानी के डबरे के समान है, इसमें विषयों का खारा जल पी–पीकर अनेक जीव मर गये, अतः तू मछली के समान पुनः डबरे की आस कर इस संसार में मत आना। कम पानी के कारण जिस प्रकार मछली तड़फ कर मर जाती है। उसी तरह जीव भी इस संसार में दुखित होता रहता है और मर जाता है। अतः तू ब्रह्मरंध्र रूपी सरोवर में जाकर निवास करना। इस संसार में एक साहूकार है और अनेक व्यापारी हैं। तू नेकी का सौदा करना। जिसका नमक खाना, उसके प्रति वफादारी निभाना। उसका कर्ज चुकाना। तत्त्व पलंग पर सेज बिछी है। वहाँ शून्य में डेरा डालना। जहाँ चाँद–सूरज दोनों तपते रहते हैं। वहाँ जाकर अपनी विजय का झंडा गाड़ना। सिंगाजी कहते हैं कि– तू सतगुरु की दीक्षा अवश्य लेना। सतगुरु की परिक्रमा कर पाँव छू लेना, चरण स्पर्श कर लेना और उनके द्वारा दिये गये ज्ञान को घोल–घोल कर पीना। इस विधि से मनुष्य तू संसार के आवागमन के बंधन से मुक्त हो जाएगा।

मत कर मनुआ दिला–मिली।
आखिर चलना मुसाफिरी।। टेक।।
जबहि मुसाफिर रोटी पकायी।

कछु खायी कछु बाँध लयी।।
जबहि मुसाफिर कम्मर बाँधी।
तबहि साहब बाँह गही।।
अस्सी कोस की राड़ी पड़त है।
पत्र झडै जहाँ झड़ा–झड़ी।।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधौ।
दर्शन करलो घड़ी–घड़ी।।

मनुष्य संसार में मुसाफिर की तरह आता है और वापस चला जाता है। हे मन! तू इस संसार से अधिक दिल को मत मिला। अर्थात् तू सांसारिक सम्बन्ध अधिक मत बढ़ा। अधिक मोह मत कर। आखिर तुझे मुसाफिर की भाँति एक दिन यह संसार छोड़कर चले जाना है। जब मुसाफिर रोटी पकाता है तो वह कुछ खाता है और बची हुई रोटियाँ बाँध लेता है, अर्थात् कुछ वस्तुओं का वह उपभोग करता है और कुछ को सहेजकर रख लेता है। जब यात्री चलने के लिए कम्मर कस लेता है। तब साहब बाँह पकड़ता है। अर्थात् जब पूर्ण तल्लीनता से साधना मार्ग पर जीव चल पड़ता है, तब ही ब्रह्म बाँह पकड़ता है, शरण में लेता है। अस्सी कोस की राड़ी पड़ती है, या अस्सी कोस का सघन वन पड़ता है, जिसमें पत्रों की झड़ी लगी रहती है। कुण्डलिनी शक्ति के जागरण से लेकर ब्रह्मरंध्र तक पहुँचने के मार्ग की अस्सी कोस के घने जंगल का रुपक दिया है। सिंगाजी कहते हैं कि– उस सघन वन को पार करने के बाद निरंजन के हर पल दर्शन होते हैं।

चढ़ी जा सोहम सीधी धारा, मन तू चढ़ी जा सोहम सीधी धारा।।
जहाँ बरसत नूर अपारा।। टेक।।
दिल दरियाव अमीरस मीठा, और नीर सब खारा।

एक बूँद का सकल पसारा, छिटक रह्यों संसारा।
ढीमर जाल समुद्र झकोरे, काल ने जाय पछारा।।
मन मछवा चढ्यो सीधी धारा, ब्रह्म का किया विचारा।
अरध–उरध दोई राह बणी छैं, कोई समझे समझन हारा।।
चुन–चुन पंथी सेवा कीन्हों, नहीं पाया तुम्हारो पारा।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधौ, छिन में ब्रह्म निहारा।।

हे मन! तू सोहम् तक पहुँचने के लिए सीधी धारा को चढ़ जा। कुण्डलिनी को संबोधित करता हुआ सन्त कवि कहता है कि तू सुषुम्ना नाड़ी के सहारे सीधे सहस्रदल कमल तक चढ़ जा। वहाँ अपार प्रकाश बरस रहा है। ब्रह्मरंध्र से टपकते अमृत का स्वाद ही मीठा है और संसार के सारे स्रोतों का जल खारा है। अर्थात् सच्चा सुख ब्रह्म से मिलने में ही है। संसार की भटकन दुःख का कारण है। एक बूँद से ही सारे संसार की रचना हुई है। वही अनेक रंगों में बिखरा हुआ है। मन रूपी मछली मोह के जाल में फँसकर संसार में उलझा रहता है। काल रूपी ढीमर समुद्र में झकोर दे देकर मछली को फँसाता है और फिर पछाड़ता है। इसलिए हे मन! तू सीधी धारा चढ़कर ब्रह्माण्ड में पहुँच जा और ब्रह्म का ध्यान कर। अरध–उरध जहाँ दोनों राह बने हैं। अर्थात् चुने हुए कई साधकों ने रहस्य को कोई ज्ञानी ही समझ सकता हैं। चुन–चुन पंथी रास्ते से अर्थात् उर्ध्व और निम्नगामी दो ही मार्ग हैं, पर उर्ध्वगामी मार्ग के सेवा की, पर पार नहीं पा सका। सिंगाजी कहते हैं– हे साधु! सुनो, मैंने इस क्षण में ब्रह्म को निहारा है।

मन तू कैसा निरभय सोए, यहाँ कोई अपना नहीं होए।।टेक।।
काम क्रोध दोई अतिबल जोधा, विष के बीजा बोए।
पाँच रिपु तेरे संग चलत हैं, वो जड़ मूल से खोए।।

माता–पिता ने जलम दियो है, त्रिया संग नहीं जाए।
भरम–भरम नर जनम गँवायों, आयी बाजू खोए।
कहे जन सिंगा अगम की वाणी, अन्तकाल को रोए।

मन ! तू कैसा निर्भय होकर सो रहा है, तू सतर्क हो जा। चेत जा। इस संसार में कोई अपना नहीं होता है। काम और क्रोध दोनों बलशाली योद्धा के समान हैं, जो जीवन में निरंतर विष के बीज बोते रहते हैं। पाँच शत्रु तेरे साथ चलते रहते हैं। (काम, क्रोध, मद, लोभ, मत्सर) वे तुझे जड़ मूल से ही नष्ट करने की फिराक में रहते हैं। जन्म देने वाले माता–पिता और अन्त समय में पत्नी भी साथ में नहीं जाती है। हे मनुष्य संसार में भ्रमित होकर ही पूरा जन्म गँवा देता है और मनुष्य योनि जो कि आवागमन से मुक्ति पाने का और जीव के उद्धार का सुअवसर है, उसे व्यर्थ में ही नष्ट कर देता है। सिंगाजी चेतावनी देते हुए भविष्य की बात कहते हैं कि अवसर बीत जाने पर हे मनुष्य! तू अंत समय को रोता रह जाता है।

मनुआ डार सुहागी, तोहे कैसी दुरमत लागी।। टेक।।
मेरी–मेरी करत बहुत दिन बीते, अजहूँ जेत अभागी।
झीना रूप अनूप ही दीखे, क्या सोए उठ जागी।।
गाज न बीज पवन नहीं पानी, बिन बदली झर लागी।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधो, साईं देख भय भागी।।

मन! ब्रह्म रूपी वृक्ष की डाली सुहानी है, तूझे कैसी दुर्गति लगी है कि तू अलख निरंजन का ध्यान न करते हुए संसार के मोह में फँसा रहता है। मेरी–मेरी करते–करते बहुत समय बीत गया अर्थात् जीवन का लम्बा समय माया के फँदे में बीत गया, अब तो हे अभागे तू सचेत हो जा। उस अलख निरंजन का झीना रूप बड़ा ही अनुपम दिखायी देता है, तू गफलत में क्या सोया है, सचेत हो। जागकर उठ

खड़ा हो जा। वहाँ शून्य गगन में मस्तिष्क के भीतर ब्रह्मांड में बिना गर्जना के, बिना बिजली के बिना पवन–पानी के और बिना बादल की झड़ी लगी हुई है। अर्थात् ब्रह्मरंध्र से अमृत वर्षा हो रही है। सिंगाजी कहते हैं– वहाँ बैठे मेरे स्वामी को देखकर सांसारिक भय भाग जाता है। मृत्यु का भय समाप्त हो जाता है।

अटल तेरी बादसाही रे मनुआ, अटल तेरी बादसाही।। टेक।।
मन अहंकारी घोड़ा कर ले, पवन की कर असवारी।
चन्द्र–सूरज दोई मोर्चा कर ले, सुरता सबद ठहराई।।
सार सबद की झलका कर ले, बख्तर मोती पहराई।
अनहद नाद जुझाऊ बाजे, फौज लई है भारी।।
चार खूट का बादसाह तू ही, और दूजा नहीं कोई।
पकर मँगावे अदल चुनना, जाकी फिरे दुहाई।।
इतसे बोता उतते चुनना, निरफल कभू न जाई।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधो, उनकी सुफल कमाई।।

हे मन ! तेरी बादशाही अटल है। तू साधना से उस स्थान को पा सकता है, जहाँ से तुझे कोई हिला नहीं सकता। अर्थात् तू मोक्ष का अधिकारी हो सकता है और तेरा अटल राज्य कायम हो सकता है। तू अहंकार को घोड़ा बना ले और पवन की सवारी कर ले। घोड़े पर सवार होकर उसे वश में किया जाता है, अहंकार को घोड़े का रूपक देकर बहुत सुन्दर तरीके से तथा बहुत मार्के की बात कही है। मोर्चे के ऊपर चन्द्र सूरज को खड़ा कर ले। अर्थात् गगन मंडल में जहाँ सूर्य और चन्द्र सरीखी ज्योति फैली हुई है, वहाँ तक तुझे जाना है। बीच के साधना मार्ग में सिपाही लड़ रहे हैं। खास शब्द सोहम् की तू झलका धारण कर ले और मोतियों से युक्त कवच पहन ले। अनाहत नाद रणभेरी की तरह बज रहा है और विषयों की, विकारों

की सारी सेना मार गिरायी है। इस तरह शून्य गगन में पहुँचकर चारो दिशाओं का तू राजा है और तेरे सिवाय कोई दूसरा नहीं है। जो तत्त्व जीव को अपने अंश से जोड़े रखता है, उसी का हुक्म चलता है और उसी की दुहाई छायी रहती है। उसी की महिमा फैली रहती है। सिंगाजी कहते हैं कि– जो इधर सुकर्म का बीज बोते हैं और उधर काट लेते हैं, उनकी मेहनत कभी निष्फल नहीं जाती तथा उन्हीं की कमाई सफल एवं सुफल होती है।

अहो मन म्हारा, क्यों भूल्यो भरमणा माही।। टेक।।
जी कारण नर जाय तीरथ, उ थारा घट माही।
उ तीरथ खु अपणों करी लेखी, जमऽ भवरो रइयो बिलमाई।।
अगम घाट त्रिवेणी तीरथ, जहाँ सुरत लौ लाओ।
गंगा जमुना सरस्वती, त्रिवेणी में नहाओ।।
अजपा ऊपर एक मुकाम, जोत एक झिलमिली।
अनहद नाद बजे चौघड़िये, भँवर गुफा के माहीं।।
गुरु प्रताप साधु की संगत, धन सिंगा जस गाई।
हद्द छोड़ बेहद को ध्यावे, जम काल नी खाई।।

मेरे मन! तू भ्रम में क्यों भूला हुआ बैठा है? जिसके लिए तू तीर्थ जाता है, वह ब्रह्म तेरे हृदय में ही स्थित है। हृदय के भीतर स्थित तीर्थ को ही अपना असली तीर्थ मानो, जिसमें मन भ्रमर बिलम रहा है। भीतर स्थित तीर्थ में घाट अगम है, त्रिवेणी (इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना का मिलन बिंदु) ही तीर्थ है। उसी में ध्यान लगाओ। इस प्रकार गंगा यमुना और सरस्वती (इंडा, पिंगला, सुषुम्ना) से निर्मित त्रिवेणी में स्नान करो। त्रिकुटी संधि स्थल पर ध्यान लगाओ। अजपा जाप जहाँ होता है। अर्थात् कंठ स्थल के ऊपर मस्तिष्क में एक जगह है–ब्रह्मरंध्र, जहाँ झिलमिल प्रकाश की लौ है। वहाँ गहन गुफा के भीतर अनाहत नाद रात–दिन बजता रहता है। सिंगाजी कहते

हैं– गुरु की कृपा हो, साधु की संगत हो और जो व्यक्ति हद छोड़कर बेहद को स्मरण करता है, सीमाओं को तोड़कर असीम को जपता है, उसे काल और यमराज भी खा नहीं सकते। वह अमर हो जाता है।

झूठी अरधंगी ने तोहे भरमायो, नहीं उतरन दे पारा रे हंसा।। टेक।।
काम क्रोध कछ मछ बसत है, लोभ मगर खावे हाड़ा।
अहंकार की लहर जो आवे, मद का उड़त फुवारा।।
दुरमति दोयत भव जल गंदलो, कपट भँवर केरा–फेरा।
आसा तरषणा की काजी बहत है, पीवे सोई बीमारा।।
खोजी खेवटिया या नाव चढ़्या छै, साधु ये सबसे न्यारा।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधो, डुब्या मूड़, गँवारा रे हंसा।।

जीव! तूझे झूठी अरधांगी ने भ्रमित कर रखा है, वह तुझे संसार सागर से पार नहीं उतरने दे रही है। इस सागर में काम क्रोध रूपी कछुआ और मछली रहते हैं और लोभ स्त्री रूपी मगर निरंतर जीवन की हड्डियों को खाता रहता है। अहंकार की जब–जब लहर उठती है, तब–तब मद का फुआरा उड़ता रहता है। दुरमति के द्वारा संसार समुद्र का पानी गंदा होता रहता है और इसमें कपट की भंवर उठती रहती है। आशा और तृष्णा की काई बहती रहती है, इसे जो पीता है, वह बीमार हो जाता है। उसे ईश्वर नहीं मिलता। सिंगाजी कहते हैं– संत और साधक लोग केवट की तरह नाव पर चढ़कर इस संसार समुद्र से पार हो जाते हैं और मूर्ख गँवार व्यक्ति इसी में डूब जाते हैं। उन्हें निर्वाण नहीं मिलता।

गम को मारग वाको।। टेक।।।
खांडा की धार छुरी को पानो, जहाँ असल सुई को नाको।
परधन माल पराई तिरिया, इधर–उधर मत झाको।।
सोहम सिखर गढ़ चढ़िजा मनुवा, गिरे तो यहाँ को नी वहाँ को।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधो, जहाँ भक्ति को नहीं है।।टाको।।

ब्रह्म से मिलने की उत्कंठा, उसकी जो बैचेनी का मार्ग है वह बहुत टेढ़ा है, कठिन है। वह तलवार की धार जैसा है। चाकू की नोक सरीखा है और वह इतना सकरा है, जितना कि सुई का छिद्र होता है। पराया धन, परायी स्त्री की आकांक्षा वश इधर–उधर ताकना–झाँकना दुराचरण है। साधना मार्ग के अवरोध हैं। हे मन! तू सोहम् जहाँ निवास करता है, उसे शून्य शिखर गढ़ पर चढ़ जा! यदि साधना मार्ग से फिसल गया तो तू न यहाँ का रहेगा न वहाँ का। तेरा जीवन भी न सुधर सकेगा और न ही मोक्ष मिल सकेगा। सिंगाजी कहते हैं– वहाँ पर भक्ति का जरा–सा भी टाका नहीं लगा है। वहाँ भक्ति मार्ग से नहीं ज्ञान मार्ग अर्थात् योग साधना से ही पहुँचा जाता है।

चढ़ी जा सोहम् धारा रे मन तू, क्यों फिरे मारा–मारा।।टेक।।
तज दे कपट अटारी महल पे, जा बैठ रे गंवारा।
वहाँ का खेल निराला देखो, यहाँ है झूठा पसारा।।
चढ़ी गगन मगन हुई देखो, बहत त्रिवेणी धारा।
उस धारा में नहाई धोई लेओ, फिर नहीं लागे किनारा।।
बीच त्रिवेणी सुमिरण कर ले, जपले सोहम्, प्यारा।।
वो है सौ तू है, तू है सो वो है, रख निश्चय आधारा।।
ये है तंत, संत नित प्यारा, रख निश्चय ये धारा।।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधो, हरि भजन का प्यारा।।

हे मन ! तू सोहम् को प्राप्त करने के लिए सीधी धारा चढ़ जा। अर्थात् तू साधना करते हुए मूलाधार चक्र से सहस्र दल कमल तक की सीधी यात्रा पर चल पड़। तू मारा–मारा क्यों घूम रहा है। इधर–उधर क्यों भटक रहा है। हे गँवार! तू कपट त्याग कर अटारी महल पर जाकर बैठ जा। अर्थात् कपट, बैर आदि विकारों को त्याग

कर ब्रह्मांड स्थित सातवें चक्र पर जाकर बैठ जा, जहाँ ब्रह्म का निवास है। वहाँ का निराला खेल है। इस संसार में तो सब झूठ का ही विस्तार है। आकाश में चढ़कर (मस्तिष्क स्थित ब्रह्मरंध्र) आनन्दित होकर देखों, वहाँ त्रिवेणी की धारा बह रही है। उस त्रिवेणी की धारा में स्नान कर लो, अन्यथा किनारा नहीं मिलेगा। जीवन का अंतिम लक्ष्य प्राप्त नहीं होगा। त्रिवेणी (त्रिकुटी) के बीच ध्यान लगाकर हरि नाम सुमिरण कर ले और सोहम् शब्द का जाप कर। ब्रह्म और तू (जीव) भिन्न नहीं, एक ही है। यह निश्चय जान। विश्वास कर सिंगाजी कहते हैं– हे संतों! यही सार तत्त्व है। यह निश्चय जानो कि ईश्वर भजन से ही रीझता है।

चढ़ी जा सोहम् सीधी धारा रे, मन तू चढ़ी जा सीधी धारा।।टेक।।
बंकनाल उलटी कढ़ चाले, मेंढक रवि ससि धारा।
सुखमण नार सासरो निरमल, वाही में सिरजनहारा।।
दिल दरियाव अमीरस मीठा, ये सबको लगता प्यारा।
और जल है सब समता का, घट–घट का है न्यारा।।
ज्यों मछली जल में पहरे, ज्यों पहरे संसारा।
ढीमर जाल डाले जल माहीं, सिर पर काल का डेरा।।
अलख निवारा अलख में पारा, याही में सिरजनहारा।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधौ, प्राण देह से न्यारा।।

हे मन ! तू सोहम् शब्द का जाप करते हुए सीधे ब्रह्मरंध्र तक की यात्रा की धारा को चढ़ जा। बंकनाल के रास्ते कुण्डलिनी रूपी मेंढक उलटी चढ़ती है और वहाँ पहुँचती है, जहाँ गगन मंडल में सूर्य और चन्द्रमा का प्रकाश फैला है। सुषुम्ना नाड़ी जहाँ जाकर इड़ा–पिंगला में मिलती है, उसके ऊपर मस्तिष्क में अष्टदल कमल जहाँ खिला हुआ है, वहीं उसकी निर्मल ससुराल है। वहाँ ही सिरजनहार

बैठा है। ब्रह्मरंध्र से मीठा और प्यारा अमृत टपकता है और अन्य स्थानों का जल अलग–अलग है। जैसे मछली जल में विचरण करती है। वैसे ही जीव संसार में विचरता है। मछुआरा जाल डालकर मछली को पकड़ लेता है, उसी तरह जीव पर भी संसार में निरंतर काल मंडराता रहता है। इस संसार के जाल से वह निर्गुण ब्रह्म जो अलख है, वह ही निवारेगा। वह ही पार लगाएगा। इसी देह में सिरजनहार है। सिंगाजी कहते हैं– हे संतों! देह की सत्ता में प्राण का महत्त्व सर्वथा अलग है।

तू चढिजा सोहम् सीधी धारा रे मन तू, चढिजा सीधी धारा।।टेक।।
दिल दिरियाव उमंग जल गहरा, लहरा उठत अपारा।
सोई नीर सकल भवसा में, देखई रह्यो न्यारा–न्यारा।।
बंकनाल की तू सुध कर भाई, त्रिकुटी संगम मेला।
सुखमन नार दोऊ साँस बराबर, वही थारो सिरजणहारा।।
मन मछुओं माया की जाल म, उलझ रह्यो संसारा।
ढीमर जाल झपट कर डाले, हद छोड़ जम घेरा।।
अलख म खलक और खलक में पारा, छिन म मिले करतारा।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधो, पल में करे निरवारा।।

हे मन! तू सोहम् तक पहुँचाने वाली सीधी धारा को चढ़ जा। मूलाधार से ब्रह्मरंध्र तक की यात्रा कर ले। वहाँ ब्रह्माण्ड में आनन्द का गहरा समुद्र भरा है। जिसमें अपार लहरें उठती रहती हैं। वही जल सारे संसार में अलग–अलग रूपों नदी, तालाब, कुआँ–बावड़ी आदि में भरा हुआ है। तू बंकनाल की याद कर जहाँ बंकनाल मूलाधार में आरंभ होकर नाभि के वाम भाग से निकलकर आज्ञाचक्र में मिलती है और पुनः ऊपर की ओर जाकर शून्य क्षेत्र में प्रवेश करती है। आज्ञाचक्र में ही इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना का संगम है। इड़ा से

श्वास आती है, पिंगला से श्वास छोड़ी जाती है, सुषुम्ना में दोनों श्वास सम पर होती है, वहीं तेरा सिरजनहार स्थित है। मन रूपी मछली माया की जाल में फँसी हुई है और सारा संसार भी उसी में उलझा हुआ है। ढीमर (एक जाति जो मछली मारने का काम करती है) रूपी काल झपट कर जाल डालता है और यमराज तुरंत आकर घेर लेता है। जो दिखायी नहीं देता, उसी में सारा संसार समाहित है और दुनिया में उस ब्रह्म का अन्तहीन प्रसार है। सिंगाजी कहते हैं कि– ध्यान मार्ग से वह करतार क्षण में मिल जाता है और पल में जीव का उद्धार कर देता है।

चेत रे म्हारा चतुर जीवड़ा, सन्मुख सामरथ दीसेरे।। टेक।।
पहला पहर म म्हारा जीवड़ा, सुन्न मंडल म रहजे रे।
धर्म वृक्ष पर वासो कीजो, मन इच्छा फल पावजे रे।।
दूसरा पहर रे म्हारा जीवड़ा, कुँवर से हट कीजे रे।
बलीवत बली जौधा मारजे, पाँच इन्द्री बस कीजे रे।।
तीसरा पहर रे म्हारा जीवड़ा सतगुरु बिन मत रहजे रे।
पाँव लागि न परकम्मा दीजे, दिल दीदार को पावजे रे।।
चार पहर की रात्रि सिंगा, सतगुरु बिन मत रहजे रे।
जम का दूत तो जाती रहसे, भवसागर पार उतरजे रे।।

मेरे चतुर जीव! तू चैतन्य हो जा, सतर्क हो जा, वह समर्थ साईं सामने ही दिखायी दे रहा है। जीव को साधना मार्ग संबंधी निर्देश देते हुए कहा जा रहा है कि पहले प्रहर में शून्य मंडल में रहना, धर्म के वृक्ष पर निवास करना ताकि मनोरूप और इच्छानुसार फल पाया जा सके। यह साधना की पहली अवस्था बतलायी है। दूसरी अवस्था के बारे में कहा कि दूसरे प्रहर में हे जीव! कुँवर से, राजकुमार से हट करना और बलवान योद्धाओं पाँचों इन्द्रियों को

मारकर वश में कर लेना। तीसरे प्रहर में सतगुरु को पाकर उनकी परिक्रमा कर चरण स्पर्श कर लेना ताकि हृदय के राजा, उस ब्रह्म का दीदार कर सको। सिंगाजी कहते हैं–चौथे प्रहर अर्थात् चौथी अवस्था में सतगुरु के बिना रहना नहीं, सतगुरु की शरण में आ जाना, ऐसा करने से यम के दूत वापस चले जाएँगे और तू भवसागर से पार उतर जाना।

मन तू अमोल बाणी बोल, थारो तीन लोक म मोल।।टेक।।
ओहम्–सोहम् दोई पलवा बणाया, निर्गुणी भाव स तौल।
तन मन धन का बाट बणाया, सूरत–मूरत सी तौल।।
आठ नौ मास गरभ म राख्यो, कलु म झूठा मत बोल।
ये काया का दस दरवाजा, इधर–उधर मत डोल।।
भवसागर अथाह भयो छै, सत का पलवा खोल।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधो, अमर वचन नित बोल।।

हे मन! तू अमूल्य वाणी (अच्छी वाणी) बोल तेरा तीन लोक में नाम होगा। तू अमर होगा। ओहम्–सोहम् तराजू के दोनों पलड़ों के समान है, उनको निर्गुणी भाव से तौल। उपयोग कर। तन, मन, धन बाट के समान है। सुरति और स्मृति को इन पर रखकर तौल। तू आठ–नौ महिना गर्भ में रहा। कलियुग में, संसार में आकर तू झूठ मत बोल। इस शरीर में दस द्वार हैं, इधर–उधर तू मत भटक। संसार सागर अथाह है। इसे पार करने के लिए जीवन रूपी नौका पर तू सत्य का पाल (बादवान) खोल दे, तान दे। सिंगाजी कहते हैं कि– हे मन! तू हमेशा अमर वचन ही बोल, जिससे तेरा उद्धार हो सके।

समझ म्हारा वीर मनवा, समझ म्हारा वीर।। टेक।।
ये भवसागर पार उतरना, जाना पहला तीर।
आठ–नौ मास गरभ में राख्यो, अटल भजो रघुवीर।।

कलुकाल की घाटी चढी न, हुयो है बेपीर।।
मन दूत की नाव बनी है, लोभ भर्यो भरपूर।।
झूठा पुतला बण्या खवंटिया, किस विध उतरो पार।
लाल खंभ से खेंच बँधेगो, कौन चढे तेरी भीड़।।
गंगा यमुना नहातो डोले, मलीच जड्यो शरीर।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधो, गुरु चरण के तीर।।

मेरे वीर मन ! तू समझदारी से काम ले। इस संसार सागर को पार कर तुझे उस पार जाना है। तू आठ–नौ महीने गर्भ में रहा, तब बाहर आया है, तो तू रघुवीर का भजन कर। तू कलियुग की घाटी चढ़कर बेपीर हो गया। अर्थात् गर्भ से बाहर आकर संसार के माया–मोह में सब कुछ भूल गया। मन की नाव में लोभ का लबालब सामान भरा है और केवट झूठा है, वह वास्तविक न होकर पुतला मात्र है, पार कैसे उतर पाओगे? मृत्यु उपरान्त पाप कर्मों के भोग के कारण तुझे तपते हुए लाल खंभे से बाँधा जाएगा। तब तेरे पक्ष में बोलने, तुझे छुड़ाने कोई नहीं आएगा। गंगा–यमुना में तू स्नान करता फिरता है और तेरे शरीर पर मैल चढ़ा हुआ है। सिंगाजी कहते हैं कि– गुरु के चरणों में ही किनारा मिलेगा।

क्यों करतो गुमान मूरख मन, थारी उमर चली हैवान।।टेक।।
नहीं कछु लाया नहीं ले जायगा, क्यों करतो गुमान।
ये गुमान म सब जग बहियों, अब रट गुरु को ज्ञान।।
धन चाहे तो धरम करले, मुक्ति चाहे तो भजो राम।
संकट पड़े छे प्राण दोहेला, अवसर आवे काम।।
कौड़ी–कौड़ी माया जोड़ी, धरी राखी एक ठाण।
चलण की बिरिया काम नी आवे, यही माया ओको नाम।।
हाल दीवाणा कोई माल दीवाणा, जोबन दीवाणा गुलाम।
कहे सिंगा हम नाम दीवाणा, पाया गुरु की धाम।।

हे मूर्ख मन! तू धमंड क्यों करता है? तेरी उम्र व्यर्थ ही बीत चली। तू न कुछ लेकर आया था और न ही कुछ लेकर जाएगा, फिर घमंड क्यों करता है। इस झूठे अभिमान में सारा जग बह रहा है। अब तू गुरु के दिये हुए ज्ञान मंत्र को रट। धन चाहता हो तो धर्म कर लो। मुक्ति चाहो तो राम नाम का जाप करो। राम नाम का स्मरण ही कठिन संकट में काम आएगा। थोड़ी–थोड़ी माया जोड़कर एक स्थान पर रखी, अंत समय वह कुछ भी काम नहीं आएगी। यह सब माया का चमत्कार है। कोई अपनी स्थिति पर मोहित है। कोई अपने धन दौलत पर दीवाना है। कोई अपने यौवन पर पागल है। सिंगाजी कहते हैं कि– मैं प्रभु के नाम का दीवाना हूँ, जो मैंने गुरु के पास से प्राप्त किया है।

ऐसो जंत्र बजायो मन रे, खलक तमासो आयो।। टेक।।
संभू सरीखा जोगी कई एक, ब्रह्म सरीखा ब्रह्मचारी।
नारद सरीखो बड़ो उ ज्ञानी, कृष्ण भयो अवतारी।।
सात समुन्दर अंग पसीना, बहुतक नन्दी नाला।
अठारई बार रामायण कहिए, सिर मटकी का भारा।।
खूटी गाड़ी न तम्बू तणाया, दूकान लगाई न्यारी–न्यारी।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधो, तम्बू म खलक समायो।।

मन ! ऐसा वाद्य बजाओ जिससे संसार में तमाशा हो। दुनिया में नाम हो। शिवशंकर सरीखा योगी, ब्रह्म सरीखा ब्रह्मचारी, नारद सरीखा ज्ञानी और कृष्ण सरीखे अवतारी हो गये हैं। सात समुद्र और अनेक नदी–नाले उस ब्रह्म के पसीने से भरे हुए हैं, अठारह बार रामायण का पाठ करने पर भी सिर पर पाप की मटकी का भार कम नहीं होगा। खूंटी गाड़ कर तम्बू ताना और अलग–अलग ढंग से दूकानें लगायी हैं। सिंगाजी कहते हैं कि–उस तम्बू में ही सारा

संसार समाया हुआ है। उस ब्रह्म ने इस दुनिया का निर्माण किया। अलग–अलग तरह के चेहरे बनाये। वस्तुएँ बनायी और उन्हीं मनुष्यों के भीतरी तत्त्व और सृष्टि के कण मिलकर संसार बना और ब्रह्म भी उन्हीं में समाया हुआ है।

नारायण भजो रे मनवा, नारायण भजो।। टेक।।
पहली पुरबली पायो नर देही, नर पसुआ सुनो।
चिन्ता तृष्णा दूर भगाओ, काम क्रोध तजो।।
खट रस, मीठ रस, कटु रस, अमीरस, बिरथा सबही रसो।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधो, हँसी–हँसी हरि भजो।।

हे मन! नारायण को भजो। नारायण का भजन करो। पूर्व जन्म के पुण्यों से मनुष्य का शरीर मिला है। चिन्ता और तृष्णा को जीवन से दूर भगाओ और काम क्रोध का त्याग करो। खट्टा रस, मीठा रस, कड़वा रस, अमृत रस आदि सभी हरि भजन के रस के सम्मुख व्यर्थ हैं। सिंगाजी कहते हैं कि–हे संतों! हँस–हँसकर प्रसन्न भाव से हरि को भजिए। नाम स्मरण कीजिए।

ऐसा दरिया है भरपूर, मन तू देखले हजूर।। टेक।।
पढ़ता पंडित वेद पुकारे, वोही बतावे दूर।
नयन खोल कर देख दीवाने, झिलमिल दरसे नूर।।
मुल्ला होकर बाँग पुकारे, अनहद बाजे तूर।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधो, जहाँ कोटिक उगिया सूर।।

हे मन! तू अपने भीतर ही देख कि एक प्रकाश का दरिया पूरी तरह भरा हुआ है। वह प्रकाश की नदी ही ब्रह्म है। उसे साधना के द्वारा मन के भीतर ही खोजा जा सकता है। पंडित वेद को पढ़–पढ़ कर उसे दूर बताता है। हे मन! तू नयन खोल कर देख उस ब्रह्म

का सौन्दर्य झिलमिलाता हुआ दिखाई देगा। मुल्ला मौलवी उसे पाने के लिए बाँग देते हैं, जोर से चिल्लाते हैं, पर वह ब्रह्म तो भीतर ही है। वहाँ अनहद नाद हो रहा है। अनहद का तूर्य बज रहा है। सिंगाजी कहते हैं कि– उस ब्रह्म का प्रकाश ऐसा और इतना है कि मानो करोड़ों सूर्य उदित हो गये हों।

विशेष : कबीर कहते हैं, कबीर तेज अनन्त का, मानो उगि सूरज सेणी।

निर्गुण ब्रह्म है न्यारा, कोई समझे समझण हारा।। टेक।।
खोजत–खोजत सिवजी थाके, उनने पार नहीं पाया।
खोजत–खोजत ब्रह्मा थाके, वो ऐसा अपरम्पारा।।
सेष सहस मुख रटें निरन्तर, रैन दिवस एक धारा।
ऋषि–मुनि और सिद्ध चौरासी, तैंतीस कोटि पचिहारा।।
वेद थके कह–कह मुख वाणी, सुरता करो विचारा।
काम क्रोध से निपटा नाही, झूठा सकल पसारा।।
त्रिकुटी महल में अनहद बाजे, होत सबद झनकारा।
सुखमन नार सुन्न में झूले, सोहम् पुरुष हमारा।।
एक बूँद की रचना सारी, जाका सकल पसारा।
सिंगाजी भर नजरों देख्या, वोही सत्य हमारा।।

निर्गुण ब्रह्म निराला है! अनुपम है! इस रहस्य को कोई समझदार व्यक्ति ही जान सकता है। उस ब्रह्म को खोजते–खोजते ब्रह्मा थक गये, परन्तु पार नहीं पा सके। शिवजी भी खोजते–खोजते थक गये, परन्तु यह अपरम्पार महिमामय ब्रह्म को न पा सके। शेष–नाग अपने हजारों मुखों से रात–दिन जिनका नाम निरन्तर रटते हैं तथा ऋषियों–मुनियों चौरासी सिद्धों ने भी उसे पाने का जतन किया तथा तैंतीस कोटि देवता भी हार गये। चारों वेद अपने मुखों से जिसका नाम उच्चारण कर–कर थक गये लेकिन उसे पा

न सके, इस असाधारण बात पर बुद्धिमान व्यक्ति विचार करें। काम क्रोध से निवृत्त जो व्यक्ति नहीं है, उसे वह ब्रह्म कैसे मिल सकता है? यह सब संसार का विस्तार झूठा है। एक दिन समाप्त होने वाला है। त्रिकुटी (मस्तक पर भौंहों के बीच में) महल में अनहद नाद बजता रहता है और वहाँ शब्द झंकृत होते रहते हैं। वहाँ शून्य में सुखदायी सूरत रूपी नारी झूलती रहती है, वहीं सोहम् पुरुष का वास है। सोहम् मेरा परम पुरुष (ब्रह्म) है, जिसने एक बिन्दु से सारे ब्रह्माण्ड की रचना की, सिंगाजी ने उसी ब्रह्म को नजर भरकर देखा जी भरकर देखा; वह ही हमारा सत्य है। वही हमारा स्वामी है।

निर्गुण धाम सिंगाजी, जहाँ अखण्ड पूजा लागी।। टेक।।
जहाँ अखण्ड जोत भरपूर, जहाँ झिलमिल बरसे नूर।
जहाँ ब्रह्माज्ञान महामूर, वहाँ पहुँचे बिरला सूर।।
कोई अकल करो व्यापारी, घट–घट में संचराचारी।
जहाँ आदि अंत ओंकारी, वहाँ सोहम् का विस्तारी।।
निर्गुण की महिमा जागी, माया ममता भागी।
सब जग काया खोजे, खोजे से आगम सूझे।।
जब निराकार को ध्याया, वहाँ झीना मारग पाया।
सूक्ष्म कमल के माही, अनहद की नाद सुनायी।।
वहाँ रमि रह्या सिंगा जाई, जहाँ कटे करम की काई।
कोई दरसन पावे बड़भागी, जब प्रीति पूरबली जागी।।

सिंगाजी कहते हैं–निर्गुण धाम एक ऐसी जगह है, जहाँ अखण्ड पूजा हो रही है। जहाँ प्रकाश से भरपूर एक ज्योति है, वहाँ एक हीरा झिलमिलाता रहता है। वहाँ ब्रह्मज्ञान भरपूर है, वहाँ कोई विरला शूरवीर (साधक) ही पहुँच सकता है। कोई सच्चा व्यापारी इसकी परख कर सकता है। वह ब्रह्म घट–घट में संचरण कर रहा

है। वहाँ शून्य में आदि तत्त्व ओंकार अपने आदि और अंत सहित मौजूद है। वहीं सोहम् का विस्तार है। जब निर्गुण की महिमा जागती है, तब माया ममता का नाश हो जाता है। सब संसार काया को खोजता है, उसी को चाहता है। वह अगम्य अगोचार तो खोजने से ही मिलता है। जब निराकार ईश्वर को पाने के लिए ध्यान लगाया जाता है, तब ही बहुत क्षीण मार्ग मिल पाता है। वहाँ सूक्ष्म कमल के भीतर अनहद नाद सुनाई पड़ता है। सिंगाजी कहते हैं कि–मैं वहाँ जाकर रम गया हूँ, विलम (खो) गया हूँ। वहाँ पहुँचकर सभी कर्मों की काई कट जाती है। उस ब्रह्म का दर्शन कोई सौभाग्यशाली ही कर पाता है और यह तब ही संभव है, जब उसके पूर्व जन्म की प्रीति जागती है।

देवल देख ले रे, जामे सत्य निरंजन देवा।। टेक।।
बिन टाँकी का देवल घड़िया, जामें देव त्रिभंगा है।
अलख पुरुष पर लख्यो न जाई, पल–पल में बहुरंगा है।।
तन कर दिवला मन कर बाती, ब्रह्म अगन तन जारो।
अन्तस घट में भयो उजियारो, सुन्न मंडल में तारो।।
दिल कर तुलसी, प्रेम का चंदन, भाव भगत से पूजो।
कथनी कथ–कथ उलट समाना, और देव नहीं दूजो।।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधो, गुरु पद से लौ लाओ।
आवागमन का फेरा मिटि जाय, फिरि जनम नहीं पाओ।।

एक मंदिर देखिए, जिसमें सत्य निरंजन देव निवास करते हैं। यह मंदिर बिना टाँके का बनाया गया है। इसमें कहीं जुड़ाई नहीं की गयी, जिसमें त्रिभंगा देव बैठा हुआ है। गंगा, यमुना, सरस्वती का संगम स्थल अर्थात् इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना नाड़ी का संगम स्थल त्रिकुटी है। वह अलख पुरुष है। उसे देखा नहीं जा सकता तथा

पल–पल में उसका रूप परिवर्तित होता रहता है। शरीर का दीपक और मन की बाती कर ब्रह्मज्ञान में शरीर को जलाना होता है, तब अन्तस के भीतर उजियारा होता है और शून्य मंडल में तारा उदित होता है। हृदय को तुलसी और प्रेम को चंदन बनाकर आस्था के साथ उस निरंजन को पूजो (ध्यान करो) और कोई दूसरा देव नहीं है, यह मैं बार–बार कहता हूँ। सिंगाजी कहते हैं कि–अपने गुरु के चरणों का ध्यान कर शब्द (ब्रह्म) से लौ लगाओ, जिससे आवागमन का चक्कर समाप्त हो जाए तथा पुनः जन्म नहीं लेना पड़े।

देखो बिजली का झल्लारा, झिलमिल बरसे बादल कारा।। टेक।।
झलके जिसकी पलक के माही, वे नर सुखी सुलारा।
सुन्न सिखर पर साईं बैठा, उनका हमें सहारा।।
दिव्य दृष्टि कर देख दीवाने, पापी का मुँह कारा।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधौ, सोहम् नाम मतवारा।।

उस ब्रह्म की चमक बिजली के समान है। बिजली जिस क्षण चमकती है, उस क्षण में सारी चीजें चमक से भर जाती हैं। धरती–आसमान के बीच प्रकाश भरपूर हो जाता है। उस चमकमय प्रकाश रेख एवं उसके प्रभाव को 'झल्लारा' शब्द से अभिव्यक्ति दी है। यह बिजली का झल्लारा व्यक्ति के भीतर ही है, उसे ही देखने की प्रेरणा सिंगाजी दे रहे हैं। व्यक्ति के भीतर ही काले बादल हैं, जिनसे रिमझिम अमृत की बरसात हो रही है। वह ब्रह्म रूपी बिजली जिस व्यक्ति की पलक में झलक जाती है, उसी का जीवन सुखी और सफल है। सिंगाजी कहते हैं कि–शून्य शिखर (व्यक्ति के भीतर का ब्रह्मांड) पर स्वामी (ब्रह्म) बैठा है, उसी का एकमात्र सहारा है। हे मनुष्य! तू अपनी दिव्य दृष्टि से उसे देख ले, ताकि पाप कर्मों या विषय वासनाओं का नाश हो जाए। उस जीवन की सफलता के लिए 'सोहम्' नाम ही मतवाला है। आनन्ददायी है। एक मात्र आधार है।

ओहम्–सोहम् दोई मूल है, म्हारो साईं सामने झूले।।टेक।।
जब लगि झूला नजर नहीं आवे, लख चौरासी डोले।
राम नाम की डोर लगी है, म्हारो सतगुरु सामनऽ झूले।।
पाँच सखी मिल मंगल गावे, मनुआ ताल बजावे।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधो, अष्ट कमल दल फूले।।

ओहम् और सोहम् दो मूल हैं। दोनों ही एक हैं और दोनों से विस्तार है–एक ब्रह्म है और दूसरा जीव है। दिखने में दो हैं, पर दोनों एक ही हैं। मेरा स्वामी सामने झूल रहा है। जब तक चौरासी लाख योनियों में जीव घूमता रहता है, तब तक यह झूला नजर नहीं आता है, अर्थात् ब्रह्म की प्राप्ति नहीं होती। इस झूले में (ब्रह्मरंध्र) में राम नाम की रस्सी (डोर) लगी है। मेरा सतगुरु सामने झूल रहा है। पाँचों सखियाँ पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ मंगल गा रही हैं और छठी इंद्री मन, ताल बजा रहा है। सिंगाजी कहते हैं कि–जहाँ अष्ठदल कमल खिला हुआ है, वहीं मेरे स्वामी विराजमान हैं।

मन सागर दरियाव है, उड़े रंग फुआरा।।
सुफल बाग मनरंग है, फूले फुलवारा।। टेक।।
ब्रह्म बीज निज बोइयाँ, तन तत्व का क्यारा।
प्रेम–प्रीति जन सींचिया, खड़ा बाग तुम्हारा।।
भाँति–भाँति के वृक्ष हैं, न्यारा–न्यारा रंगा।
नाना विधि सब फूलियाँ, चढे–देव के अंगा।।
कल्पवृक्ष शाखा घनी, फल लागा मोती।
भंवर गुफा में बैठकर, निरखे निरमल जोती।।
ब्रह्मगीर ध्यान में, मनरंग बाग लगाया।
ताकी छाया बैठकर, सिंगा पद गाया।।

मन सागर के समान है। वह निर्मल जल भरा है, जिसमें अनेक

रंग की फुहारें उठ रही हैं। मस्तिष्क रूपी गगन मंडल में अमृत से भरा सहस्र कमल ही सागर है, जिसमें आनन्द की फुहारें उठ रही हैं। अच्छे फलों से युक्त एक बगीचा है, जिसमें अनेक फूल खिल रहे हैं। तन की क्यारी में ब्रह्म ने स्वयं जीव रूपी बीज बोया है। प्रेम का जल उसमें स्नेह से सींचा है और बगिया को खड़ा किया है। उसमें अनेक तरह के वृक्ष है, वे सब अलग–अलग रंग के हैं। उसमें अनेक भावों आशाओं, आकांक्षाओं के वृक्ष हैं। वे सब अनेक विध फूलते हैं। देवता पर चढ़ते है। उसी बाग में एक कल्पवृक्ष है, जिसकी शाखाएँ सघन हैं। उसमें मोती लगे हुए हैं। कुंडलिनी शक्ति, मेरुदंड, बंकनाल और सहस्रदल कमल से वह कल्पवृक्ष बना है और ब्रह्म प्राप्ति का आनन्द ही मोती है। गहरी गुफा (ध्यान मग्न स्थिति) में उस निर्मल ज्योति को देखा जाता है। ब्रह्मगीर ने अपने शिष्य मनरंग को आशीर्वाद दिया और मनरंगगीर की छाया में बैठकर, उनकी कृपा से सिंगाजी ने निर्गुण पद गाया है।

बिन देही का साहब मेरा, देह धरी संसारा।। टेक।।
ताल पखावज बजे झाँझरी, ज्ञान कथे बहुतेरा।
कथा कीर्तन करे बहुतेरा, सो भी साहब नहीं माना।।
नागा मुनि और दिगम्बर, मुक्त राह नहीं जाना।
करे तपस्या झूले उरधमुख, सो भी साहब नहीं माना।।
देवल देवी पूजे बहुतेरा, बैठ गये तुला–दाना।
लिंग भग पूजे बहतेरा, सो भी साहब नहीं माना।।
देख–देख पाखंड सारा, मोहे पीछे जाना।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधौ, सहजे सहज समाना।।

मेरा स्वामी बिना देह का है। वह निर्गुण ब्रह्म अशरीरी है। सारा संसार उसी का विस्तार है। वह सम्पूर्ण संसार के कण–कण में देह धारण कर बैठा है। उस निर्गुण को मनाने के लिए, रिझाने के

लिए पाने के लिए ताल, पखावज, झाँझ मंजीरे बजाये जाते हैं। बहुत सा कहा–सुना जाता है। कथा कीर्तन किया जाता है। तब भी वह साहब नहीं रीझता है। मुनि नागा होकर और कोई दिगम्बर रूप धरकर उसे पाने का उपक्रम करता है, लेकिन कोई मुक्ति की राह नहीं खोज पाया। तपस्वी तपस्या की प्रक्रिया में उल्टे मुख (नीचे मुँह, ऊपर पाँव) करके झूलता है। तब भी ब्रह्म प्राप्त नहीं होता। मंदिर में जाकर अनेक देवी–देवताओं की पूजा की जाती है, तुलादान किया जाता है, लिंग और भग को पूजा जाता है, उससे भी स्वामी खुश नहीं होता अर्थात् इन सब बाहरी पूजा–पाठ के साधनों और कर्मकांडों से वह ब्रह्म प्राप्त नहीं होता। इन पाखंडों को तो देख–देख कर मोह के पीछे ही जाना होता है। मुक्ति की राह नहीं मिलती। सिंगाजी कहते हैं कि– उस सहज शून्य अवस्था में तो सहज रीति से ही जाना होता है, बाहरी आडंबरों से नहीं।।

दरयाव के अन्दरे, लाल एक जुहरे।। टेक।।
बिन पानी का सागर सारा, झीना नूर बरसता सारा
जहाँ मोती उपजे हीरे।।
सतगुरु जहाजा भर–भर लावे, कोई एक भाग पूर्बला पावे
जहाँ भरा माल अनमोले।।
मन पवन का जहाज बनाया, सुरत निरत केवटिया लागे
जहाँ लगा प्रेम की डोरे।।
कहे जन सिंगा मनरंग का चेला, कृपावन्त गुरु मेरा
मन मंगल नाचता मोरे।।

समुद्र के भीतर एक लाल (रत्न) चमक रहा है। ब्रह्मरंध्र रूपी समुद्र के अन्दर ब्रह्म रूपी रत्न झिलमिला रहा है। बिना पानी का एक समुद्र है। वहाँ झिलमिल प्रकाश बरसता रहता है। वहाँ हीरा मोती

उत्पन्न होते रहते हैं। सतगुरु उन हीरे–मोतियों से जहाज भर–भर कर लाता है। उन हीरे–मोतियों को कोई एकाध भाग्यशाली व्यक्ति ही पा सकता है। उस जहाज में अनमोल माल भरा हुआ है। मन–पवन का जहाज बना है। सुरत–निरत (स्मृति–निवृत्ति) के केवट हैं। प्रेम की डोर बँधी हुई है। सिंगाजी कहते हैं कि–मैं मसरंगगीर का चेला हूँ और मेरा गुरु कृपावंत है। मेरा मन आनन्दित होकर नाच रहा है।

खूब लगायो कारंजा, जहाँ साधु का मन रंजा।। टेक।।
ज़मीन माही सागर भरिया, उठे फुहारा तन भींजा।
ओळतेन को नीर मँगरी चढ़िया, भीजे अटारी ऊपर छज्जा।।
निशान नहीं, जहाँ फौजाँ उड़ती, बाजा बाज रह्या अनहद का।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधो, अटल खजीना साहब का।।

जहाँ पर खूब कारंजा लगा है, जहाँ पर ब्रह्मरंध्र से अमृत टपकता है। जहाँ पर निर्गुण ब्रह्म का निवास है। वहाँ पर साधु का मन रंजित होता है। वहाँ पर साधु का मन मग्न होता है। आनन्द मिलता है। वहाँ शरीर के भीतर ही समुद्र भरा हुआ है, जिसमें से उठती हुई फुआरों से शरीर भीजता है। मस्तिष्क स्थित सहस्रदल कमल में अमृत का समुद्र भरा है, जिसमें उठती आनन्द की लहरों से शरीर भींजता रहता है। जहाँ औळतेन (ओरी) का पानी मँगरी (मुँडेर) पर चढ़ता है, जिसने अटारी के ऊपर का छज्जा भींजता है। अर्थात् कुण्डलिनी शक्ति नीचे मूलाधार चक्र से ऊपर की ओर चढ़ती है और सहस्रदल कमल तक जाती है, जिससे शरीर रूपी अटारी के ऊपर स्थित मस्तिष्क भींग–भींग जाता है। जहाँ बिना ध्वज पताकाओं के ही फौज खड़ी हुई है और अनहद बाजा बजता रहता है। सिंगाजी कहते हैं कि–वहाँ मेरे स्वामी का अटल और अक्षय खजाना भरा हुआ है।

साँचा साहब मेरा नाथ जी, मैं तो दुवाली बन तेरा।।टेक।।
पाँच हथियार जुगत करि बाँधो, ठग ठाकुर अरु चोरा।
जम राय से लेऊँगा लड़ाई, सन्मुख लडूंगा अकेला।।
जीन लगाम उतरने न पावे, चलने न पावे घोड़ा।
सन्मुख रहूँगा घणी के सामने, पहला मुजरा मेरा।।
दवात मँगाले, कलम मँगाले, पट्टा लिखवा घणेरा।
अमरापुर की जमीन लिखा ले, बैकुण्ठ का बसेरा।।
चुन–चुन कनिका महल बनाया, दस दरवाजा गहरा।
कायागढ़ की करो रखवाली, लूटने न पावे डेरा।।
राम नाम की जहाज बना ले, काष्ठ भरियो बहुसारा।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधो, मनरंग उतारण हारा।।

हे नाथ! तुम मेरे सच्चे स्वामी हो, राजा हो और मैं तेरा सरदार हूँ। पाँचों, हथियारों को सतर्कता से बाधूँगा। पाँचों इंद्रियों का उपयोग विवेक पूर्वक करूँगा और संसार में होशियारी से रहूँगा। यमराज से लड़ाई करूँगा और मोर्चे पर अकेला डटा रहूँगा। साधना के मार्ग पर अकेला चलते हुए मोक्ष प्राप्त करूँगा और यमराज को हराऊँगा। घोड़ा चलने न पावे और उसकी जीन तथा लगाम उतरने न पाये। अर्थात् साधना मार्ग में कहीं कोई विचलन न हो पाये। मैं हमेशा स्वामी के ही सम्मुख रहूँगा और उनके दरबार में पहली उपस्थिति दर्ज कराऊँगा अर्थात् साधना करते हुए सबसे पहले ईश्वर के दर्शन करूँगा। दवात कलम मँगाकर भले ही कोई अपने नाम पर पट्टा ले और अमरपुर की जमीन लिखा ले। वैकुण्ठ का उसमें निवास लिखा ले। फिर भी साधना के बिना मुक्ति नहीं है। कण चुन चुनकर महल बनाया और उसमें दस दरवाजे लगाये हैं। (इस शरीर रूपी महल में दस दरवाजे हैं) शरीर रूपी दुर्ग की रखवाली करो ताकि दुश्मन डेरा लूट न पाए। राम नाम का जहाज बना लो। उसमें बहुत सी लकड़ियाँ

अर्थात् ईंधन भर लो, अर्थात् वह वजनदार होने पर भी सिंगाजी कहते हैं–गुरु मनरंग मुझे उतारने वाले हैं, मेरे उद्धारक हैं। पार लगाने वाले हैं।

खेती खेड़ो रे हरि नाम की, जा म मुकतो है लाभ।।टेक।।
पाप का पालवा कटावजो, काठी बाहर राल।
कर्म की काँस एचावजो, खेती निरमल होय।।
आस स्वास दोई बैल छै, सुरती रास लगाव।
प्रेम पिराणो कर धरो, ज्ञान की आर लगाव।।
ओहम् बक्खर जूपजो, सोहम् सरतो लगाव।
मूल मंत्र बीज बोवजो, खेती लटालूम होय।।
सत को माँडो रोपजो, धरम की पयड़ी लगाव।
ज्ञान का गोला चलावजो, सुआ उड़ी–उड़ी जाय।।
दया की दावण रालजो, बहुरि फेरा नहीं होय।
कहे सिंगा पहचाण लेवो, आवागमन नहीं होय।।

हे मनुष्य ! तुम हरि नाम की खेती करो, जिसमें बहुत लाभ है। जिससे मोक्ष भी मिल सकता है। पाप का पालवा (कटीली झाड़ियाँ) कटवा लेना और उन्हें काटकर बाहर फेंक देना। जिस तरह खेत को बोने के पहले उसमें उगी हुई कटीली झाड़ियों को काटकर बाहर फेंक दिया जाता है, उसी तरह जीवन से पाप को बाहर कर दो। कर्म काँस को बिनवाकर खेती को निर्मल कर लेना। काँस एक घास होती है, उसकी जड़े जमीन में फैली होती हैं, तो खेती करने में असुविधा होती है, इसलिए हल चलाकर उसे पहले निकलवाकर खेत को साफ कर लिया जाता है। आती–जाती श्वासें दोनों बैल हैं, जिनको सुरति की रास लगाओं। प्रेम को पिराणो हाथ में रखिए तथा ज्ञान की आर लगाओ। 'पिराणा' एक बाँस की लम्बी लकड़ी होती है, जिससे

हल–बक्खर में जुते बैलों को हाँका जाता है, उसके अग्रभाग पर नुकीली कीली लगी होती है, जिसे 'आर' कहते हैं। प्रेम को पिराणा और ज्ञान की आर से आस–श्वास दोनों श्वासों को हाँकिए। ओहम् का बक्खर जोतिए। सोहम् का सरता जगाओ। मूलमंत्र रूपी बीज बोइए। इस प्रकार खेती लटालूम होगी। सत का मांडवा बनाओ। उसमें धर्म की पैड़ी (सीढ़ी) लगाओ। ज्ञान का गोला (पत्थर) फेंकिए, ताकि तोते उड़ जाएँ। फसल को नुकसान पहुँचाने वाले पक्षी भाग जाएँ। दया की दावण कीजिए, ताकि फिर से इस संसार में आना न पड़े। सिंगाजी कहते हैं कि–अच्छी तरह जान लो इस प्रकार की खेती करने से आवागमन से मुक्ति मिल जाती है। सिंगाजी ने खेती के उपकरणों के प्रतीकों से रूपकों और उपमानों के माध्यम से साधना की खेती करने का उपदेश दिया है। इसके कारण उनकी रचना सर्वथा मौलिक और मार्मिक बन गई है।

तुझा सरीखा करी लऽरे साहब, भव सागर पार उतारी लऽरे।।टेक।।
तुझ में खाणा, तुझ में पीणा, तुझ में लेणा देणा रे।।
जहाँ देखूँ वहाँ तू ही दीसे, मन उपज्यो विसवासा रे।।
ज्यों–ज्यों मछली जल में पहरे, ज्यों पहरे संसारा रे।
जो खोजे सो नजीक पावे, नहीं तो फिरे अनजाणा रे।।
थारा कारण लीन्ही फकीरी, करतो थारी आसा रे।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधौ, जोत माजोत मिलाणा रे।।

स्वामी ! मुझे तेरे जैसा बना ले। अपने समान निर्मल कर ले, और मुझे भवसागर से पार उतार दे। मैं तुझमें इतना ध्यानस्थ हो जाऊँ कि सांसारिक क्रियाएँ करते हुए भी तुझे बिसार न सकूँ। तुझसे भिन्न न हो सकूँ। तुझमें ही लीन होकर खाना–पीना, लेना–देना करता रहूँ। जहाँ देखूँ वहाँ तेरी ही छवि दिखायी देती है। मन में तेरे

प्रति एक दृढ़ विश्वास पैदा हो गया है। जैसे–जैसे मछली जल में, गहरे जल में धँसती जाती है, उसी तरह जीव भी संसार में विषयों में अधिक से अधिक गहरा फँसता जाता है। जो उस ब्रह्म को खोजता है। वह उसे नजदीक पाता है। नहीं तो प्राणी अज्ञानी बनकर घूमता रहता है। हे प्रभु! मैंने तेरे कारण फकीरी ले ली है और तेरी ही आशा करता हूँ। सिंगाजी कहते हैं कि– प्रभु तू ज्योति में ज्योति मिला दे। जीव और ब्रह्म को एक कर दे। मुझे अपने जैसा ही ब्रह्म रूप कर ले।

नोट– तुझा–मराठी शब्द है, जिसका अर्थ है– तेरा, तेरे।

रतनों की माला, बिरला संत कोई पाईयाँ।।टेक।।
मूल कमल चौकी बणी, पूरण धरमसाला।
वाही में आप विराजिया, गुरु दीनदयाला।।
पाँच तत्व का बंगला, हीरा जड़े हो अपारा।
वाही के उजियारा में, छवि निरखणहारा।।
चन्द्र सूरज मणक्या करो, सोहं सुरति का धागा।
हरदम वाही को फेरजो, भजो अजपा की माला।।
चार नयन दो अंतरा, अंतहि खोजो भाई।
मुक्ति सुधारो सिंगा आपणी, अनहद के माही।।

विरला संत और साधक ही रत्नों की माला प्राप्त करता है। एक मूल कमल है, जिसकी चौकी बनी हुई है, वहीं पूर्ण धर्मशाला है। उसी में ब्रह्म विराज रहा है। पाँच तत्त्व का यह शरीर रूपी बँगला है। इसमें अपार हीरे जड़े हैं। उन्हीं के उजास में उस ब्रह्म की छवि को देखा जा सकता है। चन्द्र और सूर्य का मनका (माला के मोती) कर लो। सोहम् के ध्यान का धागा बना लो और अजपा जाप करते हुए उसी की हरदम माला फेरो। चार नेत्र और दो अंतरा के माध्यम से

उस ब्रह्म को भीतर ही खोजो। सिंगाजी कहते हैं कि–इस प्रकार अनहद के भीतर ही अपनी मुक्ति खोजिए।

निकट भाजै नैना, जहाँ सहज का पालणा।। टेक।।
इंगला नहीं पिंगला नाहीं, नाहीं सुखमणा ध्याना।
जोती नाहीं मोती नाहीं, नाहीं द्वादस का ठाणा।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधो, तन्त वस्तु पहेचाणा।।

जहाँ सहज का पालना है, निवास है, उसके निकट नैना भागते हैं। मन बार–बार उसी ओर भागता है। जहाँ इंगला–पिंगला नहीं हैं, जहाँ सुषुम्ना का ध्यान नहीं है, जहाँ ज्योति नहीं है, जहाँ मोती नहीं है और नहीं द्वादश का स्थान है अर्थात् एक स्थिति ध्यान में ऐसी आती है कि ध्यान मार्ग के सारे उपकरण लुप्त हो जाते हैं और केवल सहज तत्त्व भर रह जाता है। ध्यान इसी पर केन्द्रित हो जाता है। बाकी सब कुछ मिट जाता है। सिंगाजी कहते हैं– हे साधक! मूल तत्त्व वस्तु को पहचान लो। यह जीवन अमूल्य है।

मैं तो दुवाली बन तेरा हो राम, तू सच्चा साहेब मेरा।।टेक।।
जीन लगाम उतर न पावे, चलण न पावे घोड़ा।
निस दिन रहे धणी के आगु, सनमुख लड़े अकेला।।
पाँच हथियार जुगुति करि राखो, ठग ठाकुर भव तेरा।
गढ़ किल्ले की करो रखवाली, लुटण न पावे गढ़ तेरा।।
दीवान मँगाले कलम बुलाले, पट्टा लिखाले घणेरा।
अमरापुर की जमीन लिखा ले, वैकुण्ठ का बसेरा।।
कंकर चुना ले महल बना ले, मँजूर लगा ले घणेरा।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधो, पहला मुजरा मेरा।।

राम! तू सच्चा मेरा स्वामी है। मैं तेरा सरदार हूँ। सिंगाजी

साधना मार्ग में रत जीव की तुलना एक ऐसे सरदार से कर रहे हैं, जो हमेशा युद्ध के लिए तैयार और सतर्क रहता है। युद्ध के तथा बादशाह से जुड़े हुए प्रतीकों के माध्यम से इस पद में साधना मार्ग की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। घोड़े की पीठ से जीन और मुँह से लगाम अलग न होने पाए और घोड़ा चलने न पाये। रोज स्वामी के सामने रहे और शत्रु से अकेला ही लड़ता रहे। पाँचों हथियारों को संभाल कर रखें, क्योंकि यह संसार ठगों से भरपूर है। दुर्ग की रखवाली करो, ताकि गढ़ लुटने न पाए। दीवान (लकड़ी का छोटा मेज, नीचे बैठकर जिस पर लिखने का काम किया जाता था) और कलम बुला लो, अपने नाम अनेक पट्टे लिखा लो, अमरपुर की जमीन लिखा लो, वैकुण्ठ का बसेरा लिखवा लो। कंकर पत्थर इकट्ठा कर मजदूर लगाकर महल बना लो, लेकिन ईश्वर भजन के बिना जीव का कल्याण नहीं है। सिंगाजी कहते हैं कि–उस निरंजन स्वामी के लिए मेरा यह पहला मुजरा (हाजरी) है।

सुरत सावला साहेब म्हारा, पड़पंच का रखवाला रे।
कूण सऽ हमने रोस करना, कूण सऽ करना अलवारी रे।।टेक।।
आप हाथ के रंग बणाव, आप बणाव फुतळई रे।
फुतळई म तो तार पेराव, फेरऽ अवळई सवळई रे।।
पिंजरों बणायो जेमऽ तोतो मेल्यो, चाव नीर दमऽ दाळई रे।
तोता ख तो दियो उड़ाई, पिंजरो दियो ढुळकाई रे।।
उज्जड़ खेड़ा फिरी अरु काया, जन्म काल का कोळई रे।
घर भेटू हो गाँव लुटाया, सूना मंदर दिया बाळई रे।।
भजन आरती पुष्प पूजा, नित सुमरा बन माळई रे।
बाबा सिंगा अरज करता, राखी लेव चरण में पाळई रे।।

मेरा साहब साँवली सूरत वाला है! सारे सांसारिक प्रपंचों से

वह ही मेरी रक्षा करेगा। इस संसार में कभी–कभी व्यक्ति कई बिन्दुओं पर निर्णय लेने में स्वयं को असमर्थ पाता है। तब वह ईश्वर के भरोसे छोड़ देता है। हरि भक्त इस संसार के प्रपंचों से ऊबकर सब कुछ ईश्वर पर छोड़ देता है। किनसे इस संसार में गुस्सा करना, किनसे बदमाशी करना। जिस प्रकार एक कलाकर पुतलियाँ बनाता है, उनको रंगता है, उन गुड़ियाओं में तार बाँधकर इधर–उधर नचाता है, उसी तरह ईश्वर ने जीव बनाया, शरीर बनाया, अनेक इच्छाएँ पैदा की परन्तु डोर अपने हाथों में रखी और संसार में वह जीव को इधर–उधर नचाता रहता है। पिंजरा बनाया जाता है। उसमें तोता पाला जाता है। बड़ी चाहत से दाल और पानी उसे खाने–पीने को दिया जाता है, एक दिन तोते को उड़ा दिया जाता है और पिंजरे को लुढ़का दिया जाता है, पिंजरा यहाँ पर शरीर है और तोता है जीव। जीव के निकल जाने के बाद शरीर उजड़े हुए गाँव की तरह रह जाता है। काल उसे ग्रस लेता है, जीव निकल कर फुर्र हो जाता है और सूने घर शरीर) को जला दिया जाता है। यह संसार एक उद्यान है और ईश्वर उसका वनमाली है। सिंगाजी विनती कर कहते हैं कि–हे वनमाली! भजन आरती और फूलों द्वारा पूजा से मैं रोज आपका स्मरण करता हूँ। हे साईं! मुझे अपने चरणों में स्थान दीजिए।

अब काहे को कलपे मूरख, कोई परदेसी आया रे।। टेक।।
एक बूँद की रचना सारी, गया बूंद बहुतेरा रे।
गया बूँद का खोज न करिया, रह्या बूँद यूँ रोया रे।।
माता कहती पुत्र हमारा, पुत्र कहे मेरी माता रे।
मेरी–मेरी करे बहुतेरी, संग कछु न लाया रे।।
कहा करे सीपन का मोती, लाखन हीरा खोया रे।
साँच कहूँ तो कोई नहीं जाने, जनम नहीं कोई संगी रे।।

कहा भये असरा पे पहरे, आलम दुनिया नंगी रे।
चन्द्र–सूरज दो बाजू कहिए, कोटि भानु उजियाला रे।।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधो, बहुरि जनम नहीं पावे रे।।

मूर्ख! क्यों दुखित होता है, कोई परदेशी आया था, वह चला गया। यहाँ जीव परदेशी है, जिसके जाने पर परिवार दुखित होता है। एक बिन्दु से सारा संसार बना हुआ है। उसी से अनेक जीवों का निर्माण हुआ है, उनमें से अनेक बूँदें आती–जाती रहती हैं। जाने वाली बूँद (जीव) की खोज नहीं की जाती और जो शरीर पड़ा रहता है, उसके लिए रोया जाता है। दुखित होते हैं। माता कहती है वह मेरा पुत्र है और माता की मृत्यु पर पुत्र कहता है यह मेरी–माता है। मेरी–मेरी ही करता रहता है, जबकि वास्तविकता यह है कि साथ में कुछ लेकर नहीं आया था। जीव जो सीप के मोती के समान है। दुनिया उसके लिए रोती है और ब्रह्म जो लाखों का हीरा होता है उसको खोकर भी उदास नहीं होती। सचाई तो यह है कि जन्म भर का कोई संगी नहीं होता, सब स्वार्थवश साथी होते हैं। अच्छे वस्त्र पहनने से क्या होता है, पूरी दुनिया तो नंगी है अर्थात् सारा संसार व्यर्थ है। सिंगाजी कहते हैं कि–चन्द्र–सूर्य दो शरीर के दो भाग हैं; दाँया भाग सूर्य है, बाँया भाग चन्द्र है। उस ब्रह्म के देश में करोड़ों सूर्यों का उजेला है। वहाँ पहुचने के बाद पुनः जन्म नहीं लेना होता है।

क्या खूब बनी रे अवदागिरी, ऐसो जनम न आवे फिरी।।टेक।।
नौ महिना में बनी अवदागिरी, क्या फकीरी तेरी।
अबदागिरी के अन्दर, क्या करे रे मुसाफिरी।।
बाजे तो जुझाऊ बाजे, अनहद बाजे तूरी।
खेंच खड़ग मैदान में ढाड़े, बाँधी ज्ञान की छूरी।।

बजा नगाड़ा जीत का, तोपें झालर गहरी।
कायागढ़ की कर रखवारी, बैकुण्ठ की जागीरी।।
सुमत तो सतगुरु ने दीनी, कुमत डारो दूरी।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधो, इस विधि जायगा तरी।।

यह शरीर भी क्या खूब बना है। मनुष्य जन्म जैसी उत्तम योनि पुनः नहीं मिलेगी। यह काया नौ महीने में बनी है और तू इसका मालिक होकर भी फकीर की तरह है। यह काया तेरी होते हुए भी तेरी नहीं है। इस काया के अंदर जीव एक मुसाफिर की तरह रहता है और चला जाता है। जुझारू बाजे इसके अन्दर बजते रहते हैं। अनहद नाद की तूरी (तूर्य) बजती रहती है। शूरवीर जीव ज्ञान की छुरी को बाँधकर तलवार खेंचकर साधना के मैदान में खड़ा हो जाता है। अर्थात् साधक ज्ञान के माध्यम से और ध्यान मार्ग से साधना के क्षेत्र में तत्पर और रत हो जाता है। एक दिन उसकी जीत का डंका बज जाता है। कायागढ़ की रखवाली करते हुए, साधना करते हुए वैकुण्ठ की जागीरी (जमीदारी) प्राप्त की जा सकती है। कुमति को दूर कर सदगुरु द्वारा दी गयी सुमति को धारण करो। सिंगाजी कहते हैं– हे मनुष्य! तू इस रीति से तर जाएगा।

स्वामी हँसे बहुरंगी, जिनने जन्म लियो ऋषि शृंगी।।टेक।।
उत्तर तट मुख जोवो गगन में, आसन पलक लगाओ।
बैठी सुहागिन सन्मुख ठाड़ी, कर्म कपाट खुलाओ।।
सोहम् ब्रह्म को सुमिरन करी न, जाकी नहीं निंसगी।
दिव्य दृष्टि चढ़ि गयो सुरंग में, काल देखी रह्यो जंगी।।
मिले ब्रह्म में ब्रह्म मिलाये, संत की माया विहंगी।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधो, माया ख समझो लफंगी।।

एक किंवदंती के अनुसार सिंगाजी शृंगी ऋषि के अवतार थे।

समाधि लेने से पूर्व यह भजन सिंगाजी कहते हैं–वह बहुरंगी स्वामी (ब्रह्म) हँस रहा है कि ऋषि ऋंगी का अवतारी पुरुष सिंगाजी साधना के बल पर मेरे नजदीक आ रहा है। सिंगाजी साधना पद्धति का रेखांकन करते हुए कहते हैं कि उत्तर की ओर मुँह करके बैठो और गगन में देखो तथा पलक बंद करके आसन लगाओ। अर्थात् ध्यानस्थ होकर मस्तिष्क स्थित गगन में सुरति लगाओ और पलक बंद करके अन्तर यात्रा में प्रवृत्त होओ, तो सुहागिन नारी जो बैठी है, वह खड़ी हो जाएगी, अर्थात् कुण्डलिनी जागृत होकर उर्ध्वमुखी हो जाएगी। इस तरह अपने कर्म के द्वारा सीखिए। सोहम् ब्रह्म का स्मरण कीजिए, जिसकी कोई बराबरी नहीं हैं। अर्थात् जिसके समान शक्तिशाली और सर्वात्म कोई दूसरा नहीं है। साधक दिव्य दृष्टि प्राप्त कर गहरी सुरंग में घुस जाता है। ब्रह्म से मिल जाता है। अमर हो ताजा है और काल देखता रह जाता है। इस तरह ब्रह्म में ब्रह्म मिल जाता है। संत की महिमा निराली है। सिंगाजी कहते हैं कि–ब्रह्म ही सत्य है। माया ठगोरी है। लफंगी है।

वा घर की मोहे कोई न बतावे, जा घर से जीव आया हो।।टेक।।
ब्रह्मा विष्णु महेश नहीं था, नहीं थी मूल माया हो।
रज विरज भी नहीं वहाँ था, कहो जीव कहाँ से आया हो।।
अजपा जाप निराली महिमा, निरन्तर उलटकर आया हो।
खबर नहीं जहाँ गुरु शब्द की, नाहक फेरा खाया हो।।
काया छोड़ चला ये हंसा, कहो जीव कहाँ समाया हो।
हरि हंसा अमर लोक में, वहाँ हंसा को वासा हो।।
सत्य–सत्य में आन समाया, गुरु ने घट में लखाया हो।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधो, सतगुरु मेल मिलाया हो।।

उस घर के बारे में मुझे कोई जानकारी नहीं देता, जिस घर

से जीव इस संसार में आया है। सृष्टि के आरंभ में जब ब्रह्मा, विष्णु महेश नहीं थे। जड़ मूल नहीं था। न ही माया थी। रज, कण भी नहीं थे, तब बताइए कि जीव कहाँ से आया? अजपा जाप की महिमा निराली है, उसे न अपना कर हमेशा उल्टा सांसारिकता में ही फँसता रहा और गुरु शब्द के बारे में विचार नहीं किया तथा व्यर्थ में ही इस संसार का चक्कर लगाया। देह धरी और निरर्थक वापस चला गया। शरीर को छोड़कर जब हंसा उड़ जाता है। तब जीव कहाँ जाकर समाहित हो जाता है? अमर लोक में हरि रूपी हंसा का निवास है, वहीं इस जीव (हंसा) का भी निवास है। जीव जाकर उसी में विलीन हो जाता है। सत्य–सत्य में जाकर मिल जाता है। सतगुरु ने उस ब्रह्म को हृदय में ही दिखा दिया। सिंगाजी कहते हैं– इस प्रकार सतगुरु ने ही जीव और ब्रह्म को मिला दिया है।

लहर–लहर कर चला, अब नहीं आणे का आणे का।।टेक।।
करो कोई लाख उपाय, फिर नहीं रहणे का, रहणे का।
दस दरवाजा प्रकट भई, दूजे तीन ख कुलप लगाई।
तीनई म ऊपर को खोजो, गुरु वही सबद है सार।।
अब नहीं आणे का, आणे का।
बंकनाल से अमीरस पीना, तिरवेणी में नहावण करणा।।
सींग दरवाजा गाजे जहाँ पे, होवे अमरत बरसात।
अब नहीं आणे का, आणे का।
बिरला साधक बरसा म भींजऽ, हीरा लाल जवाहर गूँजऽ।
अनहद मुरली बाजे गयब की, उठे छत्तीसों राग।।
अब नहीं आणे का, आणे का।
बिना नगर आबाद बस्ती, बिरला जग फिरता गस्ती।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधो, सोहम् शब्द है सार।।
अब नहीं आणे का, आणे का।।

लहरा–लहरा कर यह चल दिया, अब यह वापस नहीं आएगा। भले ही कोई लाखों उपाय कर लो, यह अब रहने वाला नहीं है। जीव जब देह छोड़ कर जाने लगता है और कुण्डलिनी जब जागृत होकर गगन मंडल की यात्रा पर चल पड़ती है, दोनों ही स्थितियों के सम्बन्ध में ये पंक्तियाँ कही गयी हैं। दसों दरवाजे खुल गये हैं। तीन में ताले लगा दिये हैं। इन्हीं तीनों के ऊपर (इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना) के ऊपर खोजने पर गगन मंडल में सार शब्द का निवास है। बंकनाल से अमृत पान करना, त्रिवेणी में स्नान करना ही जीवन का लक्ष्य है। जहाँ दरवाजे पर सिंह गर्जना (अनहद नाद) कर रहा है, जहाँ अमृत वर्षा होती रहती है। इस वर्षा में कोई विरला साधक ही भींगता है। वहाँ पर अनेक रत्नों की चमक ब्रह्म के स्वरूप में दिखायी देती है। वहाँ मुरली की ध्वनि सुनायी पड़ती है और छत्तीसों राग जहाँ बज रहे हैं। वहाँ कोई नगर नहीं बसा है फिर भी बस्ती आबाद है, उस बस्ती में कोई सिद्ध पुरुष ही घूम सकता है। सिंगाजी कहते हैं कि–सोहम् शब्द ही सार है। असली है, उसी का जाप मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करता है।

अजपा जाप दुर्लभ है, सुमिरण जिहि आवे।। टेक।।
बिन मुख से रटबू करे, जिभ्या न डुलावे।
बिन श्रवण धुन सुन पड़े, बिन नैन दिखावे।।
इंगला–पिंगला के मध्य में, पवन चढ़ावे।
त्रिवेणी के घाट पे, स्नान करावे।।
पश्चिम दिसा गगन चौकी, खिड़की उघड़ावे।
ता मध्य एक कोठड़ी, वामें ध्यान लगावे।।
चाँद सूर्य ऊगे नहीं, सोई रूप कहावे।
कहे जन सिंगा या गुपत रहनी, फेर जनम नहीं आवे।।

अजपा जाप दुर्लभ है। अजपा जाप की स्थिति प्राप्त करना कठिन है। नाम स्मरण और ध्यान से ही जो पायी जा सकती है। उस स्थिति में बिना मुख से ही हरि नाम की रटन लगी रहती है और जीभ को हिलाना–डुलाना भी नहीं पड़ता। बिना कान के ही जहाँ अनाहत नाद सुनाई पड़ता है, बिना नेत्रों के दिखायी देने लगता है अर्थात् जहाँ शारीरिक इन्द्रियों का कोई काम शेष नहीं रह जाता। आत्म ज्ञान से ही सब कुछ अनुभव होता है। इंगला और पिंगला नाड़ियों के बीच सुषुम्ना नाड़ी से श्वास के जरिए कुण्डलिनी ऊपर चढ़ती है और जहाँ तीनों नाड़ियाँ भौंहों के बीच मस्तक में मिलती हैं। उसी त्रिवेणी में वह कुण्डलिनी स्नान करती है। मस्तिष्क में पश्चिम दिशा में आकाश की खिड़की खुलती है, उसी के बीच में एक कोठरी में (कक्ष में) ध्यान लगाना पड़ता है। वहाँ बिना चाँद सूर्य उदित हुए भी प्रकाश रहता है। सिंगाजी कहते हैं कि–इस तरह के गुप्त वास के बाद पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता।

जीवो म्हारा बाच्छा सरदार, थारा बिन कूण लगावे पार।।टेक।।
जंगल काटा बस्ती कीन्हीं, सहर बसायो सार।
चन्द्र सूरज दोई झंडा रोपे, अरध–उरध बाज़ार।।
तू म्हारो बादशाह हऊँ थारो काजी, म्हारो कहा विचार।
जो चाहिए सो डेरा भेजूँ, क्यों करता अरझार।।
बैठा हुकुम थारो चाले, अटल पड़ी खनडार।
रहयत तेरी तुझ को सौंपू, मुलुक किया उजार।।
गोली–गोला थारा छूटे, चोर भयो न्योछार।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधो, लिया तत्व विचार।।

मेरे वीर सरदार! तेरे बिना मेरा उद्धार कौन करेगा। यहाँ ब्रह्म को सरदार, स्वामी मानकर जीव को एक वफादार सैनिक माना गया

है और साधना मार्ग को एक लड़ाई के रूपक द्वारा अभिव्यक्ति दी है। जंगल काटकर बस्ती बसायी। अर्थात् विकारों का जंगल काटा और सद्वृत्तियों की बस्ती बसायी। एक–एक सुन्दर, ठोस शहर को बसाया। शरीर के भीतर साधना के माध्यम से उस ब्रह्म से मिलने का वातावरण मनोभाव निर्मित किया। चंद्र और सूर्य (दोनों नेत्र) के दो विजय ध्वज गाड़ दिये हैं। आती–जाती श्वासों का बाजार लगा हुआ है। हे ब्रह्म ! तू मेरा राजा है और मैं तेरा काजी हूँ, मेरी क्या औकात है! तुझे जो चाहिए, जिस तरह का भाव और ध्यान समर्पण चाहिए वह मैं समर्पित करता हूँ। बैठे–बैठे तेरा ही हुक्म चलता है। तेरी ही मरजी से सृष्टि में सब कुछ घटित हो रहा है और तेरी ही अटल बादशाही दुनिया में कायम है। मैं तेरी रैयत तुझे ही सौपता हूँ, अर्थात् जो जीवन तूने मुझे दिया वह मैं तुझे सौंपता हूँ। सारा मुल्क उजड़ गया है, जीवन में सारे विकार नष्ट हो गये हैं और विरक्त भाव जाग गया है। संयम के गोली–गोला छोड़ने से जीवन में व्याप्त चोर–काम क्रोधादि सब आत्मसमर्पण कर चुके हैं। सिंगाजी कहते हैं कि–इस तरह तत्त्व को विचार लिया है। सत्य को पा लिया है।

मुलक तेरा मैं जागीरदार, पाँच तत्व जीव बड़ा सरदार।। टेक।।
पूरण ब्रह्म है सचराचर, चाँद सूरज बीच सोहम् तार।
नाहक मनुआ ले सिरभार, न्यारा है करनी करतार।।
हाथी घोड़ा माल खजाना, संग न चलै कोई मरती बार।
पोथी पुराण और आचार–लाद, चला खर सिर भार।।
कहे जन सिंगा पुकार–पुकार, देह धरू नहीं दूजी बार।।

ब्रह्म! यह संसार तेरा मुल्क है। तेरा राज्य है। उसका मैं जागीरदार हूँ। पाँच तत्त्व–पृथ्वी, आकाश, जल, पवन, अग्नि से बने शरीर में स्थित यह जीव बड़ा सरदार है। वह पूर्ण ब्रह्म चराचर में

व्याप्त है। चाँद और सूर्य के बीच में उस सोहम् का तार (प्रकाश) स्थित है। हे मन! तू व्यर्थ में अनेक पापों का बोझ अपने सिर पर लाद रहा है। वह ईश्वर तेरे कर्मों से एकदम अलग है। हाथी, घोड़ा, माल, खजाना, मृत्यु के समय संग नहीं चलेंगे। पोथी, पुराण और आचरण को लादकर तू गधे के समान सिर पर बोझ लेकर चल रहा है। अर्थात् पोथी, पुराण के ज्ञान और कर्मकांड से वह नहीं मिलता। सिंगाजी पुकार–पुकार कर कहते हैं कि–मैं दूसरी बार अब शरीर धारण नहीं करूँगा, अर्थात् पुनः संसार में नहीं जन्म लूँगा।

मोहे आवे अँदेशो, हरिजन ख दुख क्यों दियो।। टेक।।
हरिजन से हरि मिले, हरिनाम अधारा।
केवट प्रीति लगाई के, उतरे भवजल पारा।।
इन्द्रराज सुरपुर के, गौतम को सताया।
साक्षी भरी कोटि चन्द्रमा, जिनने क्या फल पाया।।
एक ही राजा सताइयाँ, परीक्षित राई।
भाग्य से सुकदेव आइयाँ, दिया वैकुण्ठ पठाई।।
बलक बुखारे के बादशाह, नामदेव को सताया।
सन्मुख गौआ हाणिया, राख्यों मान सवाया।।
सहस्रबाहु राजा भयो, जगदग्नि सतायो।
फरसा लियो परसराम ने, ऋण दाग चुकायो।।
लंका में रावण भयो, संतन को सताया।
जिन रघुनाथ जी अवतारे, अपणो परिवार मिटाया।।
कहते–कहते हैरान हुआ, अब चेतो रे भाई।
कहे सिंगा अपना क्या गया, यम के हाथ बँधाई।।

धार के राजा ने अनेक संतों को अपने कारावास में बंद कर रखा था। इन संतों द्वारा सिंगाजी का स्मरण करने पर सिंगाजी उन संतों को छुड़ाने जाते हैं तथा दुखित भी होते हैं। राजा को उपदेश

देते हुए कहते हैं– मुझे इस बात का बड़ा दुःख है कि तुमने ईश्वर के भक्तों को कष्ट क्यों दिया? ईश्वर के भक्तों के द्वारा ही भगवान की प्राप्ति होती है। वे हरिनाम के आधार से ही जीवित रहते हैं। केवट ने राम से प्रीत लगाई और वह संसार सागर से पार हो गया। दूसरी ओर स्वर्गलोक के राजा इन्द्र ने गौतम ऋषि को सताया, चन्द्रमा को साक्षी बनाया, लेकिन दोनों को क्या फल मिला? अर्थात् दोनों का अहित ही हुआ। राजा परीक्षित ने लोमश ऋषि के गले में मरा सर्प डालकर कष्ट पहुँचाया। उन्हें भाग्य से सुखदेव ऋषि मिल गये, जिन्होंने परीक्षित को भागवत सुनाकर वैकुण्ठ भेज दिया। बलकबुखारे के राजा ने भक्त नामदेव को सताया। भक्त नामदेव के सामने गर्भवती गाय को खड़ी करके पूछा इसके पेट में बछड़ा है या बछिया। नामदेव ने कहा कि गाय के पेट में कबरा बछड़ा है। राजा ने वहीं उस गाय को चिरवा दिया तथा उसके पेट में जैसा कि भक्त नामदेव ने कहा था, कबरा बछड़ा निकला और संत की वाणी का मान रह गया लेकिन गौ हत्या हुई। उस राजा को क्या मिला? सहस्रबाहु राजा ने जमदग्नि ऋषि को सताया। परशुराम ने फरसा लेकर उसको परास्त किया और ऋषि की मृत्यु का ऋण चुकाया। लंका में राजा रावण हुआ, जिसने अनेक संतों को दुःख दिया। श्री रामचन्द्र ने अवतार लेकर उसका नाश किया। इस तरह रावण ने अपना परिवार समाप्त कर लिया। सिंगाजी कहते हैं कि–मैं कहते–कहते थक गया हूँ। अब तो सतर्क हो जाओ। यदि अभी भी चैतन्य नहीं होगे, तो यमराज के हाथों बँधकर जाना पड़ेगा।

देऊँ तोहे ब्रह्म लखाई रे राजा, तेरी मति कैसी बौराई।।टेक।।
एक पाँव तुम धरो पेगड़ा, दूजो आसन माही।
अर्धंगी म्याना बैठाओ, आधी बैठ न पायी।।
षट विकार घट चक्कर में छोड़े, ब्रह्म समाधी लगायी।

सप्तम चक्र में जाय के उरझै, सूक्ष्म कमल के माही।।
अनुभव की यह रूप निशानी, झिल–मिल झलके माही।
कोटि रवि–शशि भयो प्रकाशा, स्फटक मणिकी झाँई।।
अगणित बाजा बजे बहुरंगी, वंशी में रह्यो लुभायी।
सिंहनाद जहाँ गहरो गाजे, भँवर गुफा के माही।।
बिन बादल जहाँ होत गर्जना, बिज बीच जोत समायी।
मोतियन की वर्षा जहाँ बरसे, पीवे सन्त अघायी।।
शेष सहस सिव शंकर हारे, मेरी कौन चलायी।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधो, कासे कहूँ समझायी।।

धार नगर के राजा जयदेव पुआर के पिता राजा सोमदेव बहुत धर्मात्मा और दानी व्यक्ति थे। उनके यहाँ अनेक संत आकर ठहरते और चले जाते। उनकी मृत्यु के बाद उनके बेटे राजा जयदेव पुआर शासनारूढ़ हो गये। राजा सोम–देव की मृत्यु के बाद संतों का आना उसी क्रम से जारी रहा, तब एक दिन राजा जयदेव ने संत से पूछा कि तुम सच्चे संत हो तो मुझे ब्रह्म के दर्शन करवाओ, नहीं तो कारावास में बंद कर दूँगा। ब्रह्म के दर्शन कराना सभी संतों के वश की बात नहीं होती। अतः राजा ने एक–एक कर अनेक संतों को जेल में कैद कर दिया। यह बात जब सिंगाजी को पता चली तो वे ग्राम पिपल्या (जिला–खंडवा) से धार के राजा के यहाँ उन संतों को छुड़ाने के लिए जाते हैं तथा राजा से निर्गुण ब्रह्म के विषय में यह चुनौती पूर्ण सीख देते हैं।

राजा! मैं तुझे ब्रह्म दिखाऊँ। तेरी मति कैसी पागल–सी हो गयी है। हे राजा! एक पाँव तुम पेगड़ा पर धरो। (घोड़े पीठ पर कसी जीन से लगी लटकती लोहे की वस्तु, जिस पर पाँव रखकर घोड़े पर सवार होते हैं।) दूसरा पाँव सिंहासन पर धरो। अर्धांगिनी को म्यान

में बैठाओ। अर्थात् जीवन का कार्य और ईश्वर का भजन एक साथ सम्पन्न करो। हरि भजन के लिए जीवन से पलायन आवश्यक नहीं है। छः विकार छह चक्रों में (मूलाधार आदि) घोड़ों और उस ब्रह्म में ध्यान लगाओं। सातवे चक्र में (ब्रह्मरंध्र) में जाकर सूक्ष्म कमल में ध्यान को उलझा लो। वह ब्रह्म अनुभव की ही वस्तु है, उसका रूप झिलमिलाता रहता है। स्फटिक मणि की चमक और करोड़ों सूर्य चन्द्र का प्रकाश वहाँ होता रहता है। अनगिनत बाजे अनेक प्रकार से बजते रहते हैं। और वंशी में जीव पूरी तरह लुभा जाता है। वहाँ गहरी गुफा में सिंहनाद होता रहता है। वहाँ बिना मोतियों की वर्षा होती है, जिसे संत जब पीते हैं। सिंगाजी कहते हैं– उस ब्रह्म को खोजते–खोजते शेष और शिव भी थक गये, तब मेरी क्या बिसात? मैं कैसे और किस किससे समझाकर कहूँ कि–उस ब्रह्म प्राप्ति का मार्ग साधारण नहीं है।

जय महाराजा लीजो, संत म्हारी, विनती सुन लीजो।।टेक।।
चक्की छोड़ दोऊ कर जोड़े, जिनको आतम ब्रह्म सूझो।
आवे–जावे नाज पिसावे, देखो चक्की को मजो।।
छड़ीदार लवलीन भये हैं, जिन्न मेट्यो भव दूजो।
काम धाम सब बनी बनावे, संत की महिमा मत बूझो।।
पुरवासी सब देखें तमाशा, तुम यो ही सत को पूजो।
सुन्न काल जब भयो साला में, पशु पक्षी को वोही सूझो।।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधो, तुम आदि अंत को भजो।।

धार के राजा जयदेव पुआर ने सिंगाजी का उपदेश सुनकर तथा पश्चाताप करते हुए सभी संतों को कारावास से मुक्तकर दिया। राजा ने अपनी भूल स्वीकार कर ली। कारावास से निकलते हुए संतों ने सिंगाजी का अभिवादन किया और सिंगाजी ने उन संतों को

प्रति–उत्तर में जय महाराज कहकर अभिवादन किया। यह पद उसी समय का है।

हे संतों! मेरी जय महाराज स्वीकार करो और मेरी विनती सुन लो। सिंगाजी का अभिवादन सुनकर कारावास में चक्की पीसते हुए संत दोनों हाथ जोड़कर खड़े हो गये तथा उन्हें आत्मज्ञान तथा आत्म ब्रह्म का अनुभव हुआ। कारावास में चक्की स्वयं ही चलने लगी और आते–जाते अनाज का पीसना जारी रहा। यह प्रक्रिया बिना संतों के अपने आप होने लगी। पहरेदार सब लवलीन हो गये, वे भी सिंगाजी के प्रभाव में आकर भव–बंधनों से मुक्त हो गये। सब काम–धाम सिंगाजी के प्रभाव से अपने आप होने लगा और संत की महिमा का बखान किया जाने लगा। सारे पुरवासी तमाशा देखते रहे। पूरी जेल में शून्य छा गया, यहाँ तक कि पशु–पक्षी तक भी मौन हो गये। सिंगाजी कहते हैं– हे संतों! तुम उस आदि–अंत से परे ब्रह्म को भजो उसी में मुक्ति है।

नहीं मरना नहीं जीना, संतो सदा अमीरस पीना।। टेक।।
थाका मन तो कटाक्ष फैला चाहे, आसमान तक धरना।
निर्गुण सागर चहुँदिसि भरिया, नैन नासिका से पीना।।
मान गुमान करो मत भाई, या दुनिया जम्म चबैजा।
घर का चोर घर ही में घुसे हैं, जतन–जतन रे रहना।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधो, तुम अमर होय के रहना।।

हे संतों! न मरना, न जीना सदा अमृत का पान करना। अर्थात् जन्म–मरण से मुक्त होकर ब्रह्मानन्द अमृत को पीते रहना। अपनी दृष्टि को भले ही आसमान तक फैलाएँ, वह निर्गुण ब्रह्म मन के भीतर ही और कटाक्ष की कोर में समाया हुआ है। निर्गुण का सागर चारों दिशाओं में भरा हुआ है, उसे नैन और नासिका से पीना चाहिए। वह

ब्रह्म सब ब्रह्म सब जगह व्याप्त है। उसे नेत्रों से दिव्य दृष्टि से देखा जा सकता है। संसार की चीजों में उसी की सत्ता को देखा जा सकता है और नासिका द्वारा श्वास के जरिए योग साधना द्वारा उसे महसूस किया जा सकता है। हे मनुष्य! मेरे भाई तुम मान–गुमान मत करो। यह संसार यमराज का चबैना है। घर का चोर घर में ही घुसा हुआ है। तेरे जीवन रूपी घर में कुमति रूपी चोर घुसा हुआ है, तुम सतर्क होकर रहना। सिंगाजी कहते हैं कि– हे मनुष्य! तुम इस तरह से जीवन जियो कि अमर हो जाओ। जन्म–मृत्यु का भय जहाँ समाप्त हो जाए।

इस विध राम रिझाओ रे साधो, तासे भवरी जलम नहीं आवे।।टेक।।
जल बीच लकड़ी, लकड़िया पर मकड़ी, मुख से तार बहावे।
आगु–आगु तार पीछु चरण बढ़ावे, तुरत किनारो पावे।।
जैसी पणिहारी चली पनघट पर, सखिया दे रही ताली।
आँख गाल बिच करत किलोला, सुरता घड़ ठहरावे।।
जैसी नटनी नचे बाँस पर, था–था ढोल बजावे।
लोग हँसे पर नटनी नहीं जावे, सुरत बाँस ठहरावे।।
सुरत सुहागणी नार सुन्दरी, याही ख गगन चढ़ावो।
कहे सिंगा सुनो भाई साधो, तब नर ठिकाणा पावो।।

साधु! इस तरीके से राम को रिझाओ, ताकि पुनः जन्म धारण नहीं करना पड़े। जल के बीच में कोई लकड़ी पड़ी होती है, लकड़ी पर मकड़ी रहती है, मकड़ी को लकड़ी पर से किनारे पर जाना होता है, तो वह आगे–आगे अपने मुँह से तार छोड़ती जाती है तथा पीछे–पीछे तार पर वह चलती रहती है और किनारे पर पहुँच जाती है। पनिहारी पनघट से पानी भरकर सखियों के साथ चलती है। सखियों के संग वह बात करती है। ताली बजाती है। गालों के बीच

मे आँखें किलोल करती है, इन सब हरकतों के बावजूद उसका ध्यान सिर पर रखे घड़े में होता है। उसे वह गिरने नहीं देती। जैसे नटनी ऊँचे बाँस पर नाचती है, था–था की ध्वनि से ढोल बजाया जाता है, लोग हँसते हैं, पर नटनी विचलित नहीं होती। उसका ध्यान बाँस पर ही लगा रहता है। सिंगाजी कहते हैं– इसी प्रकार–हे साधु! स्मृति (ध्यान) रूपी सुहागन नारी को गगन पर चढ़ाओ! ब्रह्मरंध्र तक पहुँचाओ, तब ही वास्तविक मुकाम पा सकोगे।

ऐसी वस्तु पहिचाणी संतों, जरा मरण भव तरणा।।टेक।।
सतगुरु से सौदागर कहिए, सेवक से व्यापारी।
आसमान बीच भरा खजाना, निरख–निरख कर लेना।।
भेख लिया पर भेद न जाना, बैल फिरे ज्यों घाना।
परदे अन्दर साहब ठाड़ा, उसको नहीं पहचाना।।
मूड़ मुड़ावे जटा रखावे, नगर फिरे ज्यों भैसा।
चामड़ ऊपर खाक लगाई, मन जैसा का तैसा।।
रासि पूछकर नाम सुनावे, सो ही गुरु नहीं करना।
अखंड साहब को खंडत बतावे, गुरु चेला दोई डूबना।।
गले में कफनी माथे टोपी, स्वामी तुरत कहाना।
देस छोड़ परदेस का जाना, दुनिया ठगकर खाना।।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधौ, झूठ कभी नहीं बोलना।
सच्चा साहब सिर पर राखी, इस विधि पार उतरना।।

हे संतों ! ऐसी वस्तु, ऐसा तत्त्व (ब्रह्म) पहचान लो, जिससे कि बुढ़ापा और मृत्यु को जीत कर संसार सागर से पार उतरा जा सके। सतगुरु सौदागर है, साहूकार है और सेवक व्यापारी है। आसमान के बीच में कोषालय भरा है। उसे देख–दाख कर लेना। सतगुरु ने ज्ञान दिया, शिष्य ने ज्ञान ग्रहण किया और साधना के मार्ग पर चलते हुए

गगन मंडल में ब्रह्म का निवास है। उसे देख–देख कर आनन्द की प्राप्ति करना। साधु–संन्यासी का वेष धारण किया, परन्तु उसके उद्देश्य को नहीं समझ सका और दुनिया में कोल्हू के बैल की तरह घूमता रहा। परदे के भीतर साईं खड़ा है, उसको नहीं पहचान सका। बाल कटवाकर, मुंडन कराकर या जटा बढ़ाकर नगर में भैंसे की तरह मदमस्त होकर घूमता रहता है। शरीर के ऊपर भभूत लगाकर घूमता रहता है, परन्तु मन मलीन ही बना रहता है। राशि पूछकर जो नाम बताए, ऐसा गुरु नहीं करना। ऐसे व्यक्ति को गुरु नहीं बनाना। जो अखंड ब्रह्म को खंडित रूप में बताए, ऐसे गुरु और शिष्य दोनों डूब जाते हैं। उन्हें न ब्रह्म ज्ञान होता है और न ही ब्रह्म मिलता है। गले में सफेद कपड़े का दुपट्टा, माथे पर टोपी पहनकर, स्वयं को स्वामी और ईश्वर कहलाते हैं, वे लोग देश छोड़कर परदेश, एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में घूमकर दुनिया को ठगते फिरते हैं। सिंगाजी कहते हैं कि–झूठ कभी मत बोलो और सच्चे स्वामी को अपने सिर ऊपर समझ कर अपने पास ही अपने भीतर ही जानकर संसार से पार उतरना चाहिए।

अजपा सुमरो रे भाई, तत्व वस्तु जहाँ पायी।। टेक।।
पहली पूजा गणपति की, दूजी शारदा माई।
गगन मंडल में घोर मची है, अनहद नाद सुनायी।।
जो अजपा को ध्यान धरत है, गोता कबहुँ न खायी।
बंकनाल से उलट चढ़िया, त्रिकुटी धूनी रमायी।।
रिमझिम रिमझिम मेहुला बरसे, झिमका झड़ी लगायी।
चाँद सूरज को भयो उजेला, जगमग जोत जलायी।।
बिन सतगुरु कोई ज्ञान न पावे, कैसे राह बतायी।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधो, भक्ति में मुक्ति पायी।।

अजपा जाप के माध्यम से– हे भाई! तुम उस सत्पुरुष का ध्यान करो, जिससे तत्त्व वस्तु प्राप्त की जा सके। पहली पूजा गणपति की तथा दूसरी शारदा माई की करना। यहाँ गणपति और सरस्वती से आशय अवतारी गणेश–सरस्वती से नहीं है, बल्कि मूलाधार और स्वाधिष्ठानचक्र की स्थिति से है। मूलद्वारे–गणेश देवता हैं, रंग पीला है। और इस चक्र में चार पँखुरी है। स्वाधिष्ठान चक्र में ब्रह्मा देवता हैं। जिसका सम्बन्ध सरस्वती से है, इस चक्र का स्थान द्वितीय है। इसका रंग श्वेत और पँखुड़ी छह हैं। गगन मंडल, अर्थात् मस्तिष्क जहाँ ब्रह्मरंध है, में उथल–पुथल मची है, अनहद नाद सुनाई पड़ रहा है। जो निरंजन ब्रह्म का ध्यान धरता है। वह कभी धोखा नहीं खाता। बंकनाल से उल्टा चढ़कर त्रिकुटी में धूनी रमाओ। बंकनाल का ध्यान योग में बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। कुंडलिनी इसी के सहारे उल्टी चढ़ती है और त्रिकुटी (भौंह के बीच, आज्ञा चक्र)तक जाती है और उसके बाद शून्य में प्रवेश करती है। वहाँ आनन्द की रिमझिम बरसात होती है, चाँद सूर्य का प्रकाश फैला रहता है। जगमग ज्योति जलती है। सिंगाजी कहते हैं कि– बिना सतगुरु के कोई ज्ञान नहीं पा सकता और राह नहीं मिल सकती। इस प्रकार ध्यान से ही मुक्ति पायी जा सकती है।

पंछी करले रैन बसेरो, ये तो मुसाफिरी का डेरा।। टेक।।
चौरासी तज नर तन धार्यो, अनज कियो, भयो बंजारो।
नेकी बंदी का सौदा कीनो, लदो बैल पर मारो।।
पाँच पच्चीस जब संग में लीन्हें, मिल्यो बटाऊ प्यारो।
ऐसी गैबी जब घोड़ा छूटे, जहाँ अंत पड्यो अँधियारो।।
बिन बादल जहाँ सागर भरिया, न्हावे हरि को प्यारो।
सतगुरु ने या राह बतायी, मस्त भयो मन म्हारा।।
संगी हमारा बागी हुईगा, कर दिसे उजियारो।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधो, सोहम् शब्द को हेरो।।

मनुष्य जीवन को पक्षी के समान दर्शाते हुए सिंगाजी कहते हैं – हे पक्षी! इस संसार में रैन बसेरा कर लो। यह संसार तो मुसाफिर के डेरे के समान है। चौरासी लाख योनियों में भटकने के बाद मनुष्य का शरीर धारण किया है, इस बात को भूलकर तू बंजारे की तरह संसार में भटक रहा है। अच्छाई–बुराई का तू निरंतर सौदा करता रहता है और शरीर रूपी बैल पर भारी बोझा लादता रहता है। पाँच–पच्चीस संगी साथी (कर्मेन्द्रियाँ और विषय वासनाएँ) के साथ तू बटोही के समान निकल पड़ता है और यात्रा में ऐबी–गैबी (अच्छे–बुरे, अकड़ू) घोड़े सब छूट जाते हैं और अंत समय कोई साथ नहीं देता और सामने अंधियारा छा जाता है। जहाँ बिना बादल का सागर भरा हुआ, अर्थात् ब्रह्मरंध्र में अमृत का समुद्र भरा है, जिसमें हरि का प्रिय हो स्नान करता है। मुझे सतगुरु ने यह राह बतायी है। मेरा मन मस्त हो गया है। हमारे संगी बागी हो गये। अर्थात् संसार की वास्तविकता को जानकर उससे विद्रोह कर दिया। मेरे भीतर प्रकाश हो गया है। इस तरह उस सोहम् (निर्गुण) को देखो। इस तरह उसे प्राप्त करने की पहल करो।

राम नाम का नहीं सौदा किया, धिक जीवन उस नर को।।टेक।।
गाँठ है खाली, चलयो बिसावन, सौदा माँगे नफा को।
लोभ के खातिर मूल गँवायो, उल्टो सौदा टोटा को।।
आयो थो सतभक्ति करन ख, मैल भर्यो सब विष को।
चलने की बिरिया दानी आया, रोक्यो मारग जाणा को।।
निकसन को मारग नहीं पायो, काम कियो सब चोरी को।
आयो जम जब पकड़ लियो रे, पाड़यो फेरो गफलत को।।
आयो इसारो, गयो पसारो, नहीं सहारो सतगुरु को।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधो, वो नर जग का हाथ बिको।।

जिस व्यक्ति ने राम नाम का सौदा नहीं किया, उसका जीवन

धिक्कार है। यह संसार एक बाज़ार है। यहाँ आकर जो व्यक्ति राम नाम का सौदा करता है, वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है और जो अन्य सांसारिक वस्तुओं के व्यापार में लिप्त रहता है। वह अपने जीवन के परम को नहीं पाता है। मनुष्य यदि राम नाम का व्यापार नहीं करता है तो उसका संसार में आना व्यर्थ सिद्ध होता है। मनुष्य के पास पूँजी नहीं है, वह व्यापार करने चला और लाभ मय व्यापार करना चाहता है। ऐसा व्यक्ति लोभवश अपना मूलधन भी गँवा बैठता है और उल्टा उसे हानि ही होती है। अर्थात् मनुष्य संसार में जन्म लेते समय एकदम खाली आता है, उसे राम नाम की पूँजी हासिल करना चाहिए, पर वह खाली हाथ ही इस संसार के बाजार में भौतिक चीजों का व्यापार करता रहता है और अपने पास की सहज स्वाभाविक वृत्ति के मूलधन को खर्चकर देता है तथा हानि–पूर्ण सौदा करता है। वह संसार में सत्य को खोजने और भक्ति करने आता है, परन्तु विषय वासनाओं का जहर तथा मैल अपने जीवन में भर लेता है। मृत्यु के समय दान देने से भी कुछ नहीं होता। उसका मार्ग रुक जाता है। उसे मोक्ष पाने का मार्ग नहीं मिल पाता, क्योंकि जीवन भर वह चोरी करने का काम किया करता है। अतः हरि भजन के अलावा वह विषय वासनाओं में लिप्त रहता है। उसे आकर जम (यमराज) पकड़ लेता है और गफलत में पड़ जाता है, कुछ नहीं सूझता। मृत्यु के समय सारा संसार छूट जाता है। सिंगाजी कहते हैं कि– जिन्हें सतगुरु का सहारा नहीं होता, वह मनुष्य यमराज के हाथों बिक जाता है। वह अधोगति को प्राप्त होता है।

हरिजन जीवता नहीं मुआ, नर तोहे बार–बार दुख हुआ।।टेक।।
काया कुसम्भल उभट घाटी, अमीरस धारा चुआ।
अमीरस छांड़े विष को ध्यावे, ऐसा अहमक हुआ।।
साहब देखया आसहि पासा, जम से खेले जुआ।

इस घट भीतर पाँच प्रपंची, इनको बाँध डालो कुआ।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधो, पियो अमृत दुआ।।

प्रभु के भक्त (हरिजन) जीते जी नहीं मरना। जो व्यक्ति हरि भजन नहीं करते, जो कुकर्म करते हैं, वे समझो जीते–जी मर जाते हैं और बार–बार संसार में जन्म लेते हैं। दुःख के दो कारण हैं जीवन में छोटे–छोटे सुखों के पीछे भागना उनकी अपूर्ति से उत्पन्न दुःख बार–बार झेलना पड़ता है और बार–बार जन्म लेने से दुःख उठाना पड़ता है। यह शरीर कुसमल (मखमल या नर्म वस्तु) के समान है, लेकिन वह सीधी और फिसलन भरी घाटी के समान है। इसके भीतर ही अमृत की धारा रिस रही है, अमृत चू रहा है। अर्थात् उस निरंजन ब्रह्म का निवास भीतर ही है। लेकिन मनुष्य अमृत को छोड़ कर विष के पीछे दौड़ता है। ऐसा वह अहम् और अज्ञान के कारण करता है। साहब तो आस–पास ही है और उसे दूर–दूर तक खोजा जाता है। मनुष्य व्यर्थ के कार्य करके निरंतर यमराज से जुआ खेलता रहता है। इस शरीर के भीतर पाँच प्रपंची है– काम, क्रोध, मद, लोभ और मत्सर इन्हें बाँधकर कुएँ में फेंक दो, अर्थात् समाप्त कर दो। सिंगाजी कहते हैं कि–हे संतों! इस प्रकार ब्रह्म रूपी अमृत का पान करो।।

संगी हमारा चंचला साहब नही माने।
काम क्रोध विष भरि रह्या, जासे हाथ न आवे।। टेक।।
बजे नगारे सुन्न में, जाकी सुध लीजै।
अखण्ड बरसे मोती, जासो तन भीजै।।
सपने में धन देख्यिा, मन में हरषाना।
खोल नयन जब देखिया, आखिर पछताना।।
सपने के परिवार में, क्या करे गुमाना।
एक दिन ऐसा होयगा, तन काल बिराना।।
आया था कछु काम को, सो एक न हुआ।

सच सौदा किया नहीं, सब झूठ कमाया।।
गैल हमारी साँकरी, हाथी न समावै।
सिंगाजी चिंटी बण्या, सहज ही मिल जावै।।

हमारा मन (साथी) चंचल है, वह इधर–उधर भटकने से बाज नहीं आता। काम क्रोध का विष अपने भीतर भरता रहता है, जिससे वह ब्रह्म हाथ नहीं आता है। वह प्राप्त नहीं होता है। शून्य में नगाड़े बजते हैं। वहीं पर ध्यान लगाना चाहिए। जहाँ मोतियों की अखण्ड वर्षा होती है, जिसमें तन को भींगाना चाहिए अर्थात् ब्रह्मानंद में तन–मन को रससिक्त करना चाहिए। जैसे कोई स्वप्न में बहुत–सा धन देखकर मन में हर्षित हो, लेकिन नींद खुलने पर केवल पछताना हाथ रह जाता है उसी तरह यह सांसारिकता, यह घर–परिवार भी एक स्वप्न है, इसका क्या गुमान करना। एक दिन इस शरीर को काल समाप्त कर देगा। तू इस संसार में जिस कार्य के लिए आया था, वह कुछ भी न हो सका। तू हरि भजन के लिए आया था और वह नहीं किया। सत्य का सौदा नहीं किया और सारी कमाई झूठ की। ईश्वर से मिलने की राह, साधना का मार्ग बहुत सकरा है। कठिन है, उसमें हाथी नहीं समा सकता अर्थात् हाथी के शरीर के समान विशाल अहंकारी मन वाला व्यक्ति उस साधना में सफल नहीं होता। इसलिए सिंगाजी कहते हैं कि– मैं चींटी के समान लघु हो गया, निरभिमानी हो गया, जिससे उस ब्रह्म से सहज ही मिला जा सकता है।

दया धरम क्यों छोड़ो रे धरमी, हऊँ कहूँ वचन थोड़ो रे।।टेक।।
हरिजन की आत्मा कलपावे, तूखंऽ पड़से बन्दी तोड़ो रे।
संत सतावे न तीनई बढ़ावे, तूखंऽ कुंभी पाप पड़ो रे।।
सोमदेव को वंश लजायो, वीरमती को कियो विखोड़ो रे।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधो, गिरे सोहम् सिखर से घोड़ो रे।।

मनुष्य ! तू दया धर्म क्यों छोड़ रहा है। मैं बहुत संक्षेप में तुझे बात कह रहा हूँ। यदि तूने ईश्वर के भक्त की आत्मा को दुखित किया तो तुझे यमराज के बंदीगृह में जाना पड़ेगा। तूने यदि संतों को सताया तो महान पाप लगेगा। सोमदेव के वंश को तूने लजाया है अर्थात् तू तो अमृतवंशी संतान है। तू संसार में आकर पाप कर्मों से जरा–मरण के बंधन में पड़ गया। तू वीर है लेकिन तूने साधना के मार्ग में वीरता न दिखाकर अपनी शक्ति का ह्रास व्यर्थ के कार्यों में करता रहा। सिंगाजी कहते हैं कि–हे मनुष्य! तेरा घोड़ा सोहम् शिखर से नीचे गिर गया है। अर्थात् कुण्डलिनी रूपी घोड़े को शून्य शिखर पर चढ़ना था, वह फिसलकर, साधना के मार्ग में असफल होकर नीचे गिर गया।

ये संसार असार है, बहजो मत भाई।। टेक।।
जैसा मोती ओस का, पल में घुल जाई।
झूठी कंचन कामिनी, झूठी ये माया।।
आज की रैन कसी गयी, जैसा अँधियारा।।
क्या लूटे क्या मूसते, क्या जुआँ रे बाजी।
ये पड़पंच कुड़ा घणा, गोविन्द नी राजी।।
कईयक जीव तुम हणया, दुख दियो रे भारी।
यही रे जलम अहिलो गयो, सदा रहेगा भिखारी।।
लख चौरासी भोग के, नर देही पाया।
सतगुरु चरण न सेविया, पद सिंगा ने गाया।।

यह संसार असार है, सारहीन है, निरर्थक है। इसमें बह मत जाना। इसमें भ्रमित होकर उलझे मत रहना। यह संसार ओस के समान है, जो सूर्य के प्रकाश में मोती जैसा चमकता है, पर वास्तव में मोती होता नहीं है और ओस क्षण दो क्षण में नष्ट हो जाती है। उसी तरह यह संसार भी नाशवान है। सोना और स्त्री का मोह झूठा

है। यह सब माया भी झूठी है। आज की रात अँधियारी रात के समान बीत गयी। एक जीवन अँधेरे में, माया में फँसे हुए ही बीत गया। इस संसार का क्या लूट, क्या झड़प, क्या जुआँ और क्या बाजी की जाए। यह सब माया का पड़पंच (प्रपंच) है। इससे गोविन्द (ब्रह्म) प्रसन्न नहीं होता। तुमने इस संसार में आकर अनेक जीवों को मारा, अनेक को नानाविध दुःख दिया। यह जन्म तुम्हारा व्यर्थ ही गया। तू भिखारी ही रहा। ईश्वर–धन को प्राप्त न कर सका। सिंगाजी इस पद को गाते हुए कहते हैं कि–चौरासी लाख योनियों को भोग कर तू ने मनुष्य देह पायी और फिर भी सतगुरु के चरणों की सेवा नहीं की तथा ज्ञान प्राप्त कर ईश्वर प्राप्ति का मार्ग नहीं जान पाया।

अहो आत्म ज्ञान न पावे, तब लग मुक्ति नहीं आवे।। टेक।।
मन भारी तन बस बरो, किरिया करम बढ़ाओ।
करम सी मन शुद्ध होत है, तब ओ सन्त कहाओ।।
माया मन भगणी, निश्चय बागड़ लावै।
सोळ सुहागण सुन्दरी, उ बैठी कुँआरी।
असो हरिजन तू दूर रहे, तेकासी, हूजो पारी।।
कहत–कहत जुग गया, तोभी चेत न पाया।
कहे जन सिंगा वो नर, जम का हाथ बिकाया।।

जब तक आत्म ज्ञान नहीं होता, तब तक मुक्ति नहीं मिलती। मन को मारकर, संयमित कर वश में करो और कर्म का क्षेत्र बढ़ाओ। कर्म से मन शुद्ध होता है। मन शुद्ध होने पर ही संत कहलाने के अधिकारी होंगे। माया मन की बहन है, वह मुक्ति के मार्ग में बागड़ खड़ी करती है। अवरोध पैदा करती है। वह वधिक की तरह है, जो स्त्री, पुत्र आदि माध्यम से मनुष्य का वध करती रहती है। सोलह श्रृंगार करके सुहागन सुन्दर स्त्री कुँआरी बैठी हुई है। कुण्डलिनी

माया से अछूती कुँआरी बैठी हुई है। ईश्वर की भक्त तू उस ब्रह्म से, कुण्डलिनी की शक्ति के चरम से दूर क्यों रहता है, तू माया से पार हो ले, उससे उबर जा। सिंगाजी कहते हैं– कहते–कहते युग (बारह वर्ष) बीत गये अर्थात् बहुत समय बीत गया। जो व्यक्ति सचेत नहीं होता, वह यमराज के हाथों बिक जाता है।

दान करो नहीं पुण्य रे, सुमरण की सरवर नहीं पावे।। टेक।।
धन चाहो तो धरम करो, मुक्ति चाहो भजो राम।
दोनों वस्तु विचार के, थारा मन चाहे सो लेव।।
तीरथ करो चाहे ब्रत करो, कर पथरा की सेव।
इनसे कारज न सरे, तुम पूजो आतम देव।।
कुलमा तो खेती करे, पालन को परवार।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधो, नहीं रीझे करतार।।

दान–पुण्य करके भी नाम स्मरण की बराबरी नहीं हो सकती। धन चाहते हो तो धर्म करो। मुक्ति चाहते हो तो मुख से राम नाम स्मरण करो। जो तुझे अच्छा लगता है, दोनों में से विचार कर तू उसे अपना ले। तीर्थ व्रत करो या पत्थर की सेवा करो, परन्तु इनसे लक्ष्य पूरा नहीं होगा। तुम आत्म देव की पूजा करेगा, तब ही निरंजन मिल सकेगा। परिवार को पालने के लिए व्यक्ति खेती करता है, लेकिन सिंगाजी कहते हैं– इन सब कर्मों से वह करतार रीझता नहीं है।

माझा माइरा रे बन्दो, जो इसको निरवाई।। टेक।।
चंदा का तो छाया करी ल, सुरीया करी ल गायत्री।
सवा हाथ अंचोली करी ल, सतगुरु लई ल संगाती।।
ग्यान को तो दीवलो करी ल, मनसा करी ल बाती।
राम नाम को सुमरण करी ल, चढ़ी जा निरगुण घाटी।।
ये काया का दस दरवाज़ा, दसई में ताला कूची।।

दस दरवाज़ा बन्द किया, निकल गयो रहवासी।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधौ, पिंजरो दियो ढुलकाई।।

मेरे बंदे मन! तू इस काया को निरूवार ले। इसका निर्वाह कर ले और ध्यान मार्ग से ब्रह्म को प्राप्त कर ले। चँदा की तू छाया कर ले। सूर्य को गायत्री बना ले। सवा हाथ का कपड़ा लेकर सतगुरु के साथ हो ले। ध्यान का दीपक और मनसा की बाती बना ले और राम नाम का स्मरण करते हुए निर्गुण की घाटी चढ़ जा। इस शरीर में दस दरवाज़े हैं और दस में ही ताला कूची लगे हुए हैं। मृत्यु के समय दसों दरवाजों को बंद करके इसमें रहने वाला जीव बाहर निकल जाता है। सिंगाजी कहते हैं–उस दिन यह शरीर रूपी पिंजरा लुढ़का दिया जाता है।

बहुरि नहीं आवेगो रे गँवार, भया क्या जलम अवतार।। टेक।।
पाणी सी पिंडनी बुझे, लुहरे मिले नहीं माँस।
ऊपर रंग सुरंग जड़यों है, कारीगर करतार।।
अंधे को क्या आरसी रे, क्या बहरे को बात।
जाणी बुझी नर कुँआ पड्यो रे, दीपक लीन्हो हाथ।।
अंधे ने बिस खाविया कुमत जिनकी साथ।
सुआ भगत नर चालिया, यही बड़ो संताप।।
खटरस भोजन जिमी ल प्राणी, दही दूध और भात।
तातो पाणी तुखऽ दुर्लभ हुसे, फिर नहीं होय जलझार।।
कहे सिंगा तन खोजिया, कितनोक है संसार।
तेल खुट्योबाती बुझी, मंदिर पड़े अँधियार।।

मनुष्य! तेरा यह जन्म फिर नहीं होगा। तुझे यह जन्म मिला है तो हे गँवार! तू इसे व्यर्थ मत गँवा। पानी से पिंड नहीं बुझेगा और माँस का टुकड़ा भी नहीं बचेगा। इस शरीर में ऊपर से जो लाल रक्त

माँस का रंग चढ़ा हुआ है, उसे बनाने वाला करतार है। यह शरीर एक दिन समाप्त हो जाएगा। अंधे को दर्पण दिखाने से और बहरे को कोई बात कहने से क्या फायदा? जानबूझकर मनुष्य कुएँ में गिरा है। अर्थात् मनुष्य समझता है फिर भी सांसारिक वासनाओं में स्वयं को झोंकता जाता है। मज़े की बात यह है कि हाथ में दीपक है, फिर भी कुएँ में गिर जाता है। विवेक होते हुए भी वह माया के फंदे में उलझ जाता है। कुमति जिनके साथ होती है, वे अंधे बनकर संसार के सुखों का जहर खाते रहते हैं। तोते के समान भक्त इस संसार को छोड़कर चल देता है। लोग इसका संताप मनाते हैं। षटरस भोजन, दूध–दही, भात, गरम पानी आदि जीवन की बाहरी सुविधाएँ इस संसार में जीवित रहने तक ही तू उपभोग कर ले, मरने के बाद ये सब दुर्लभ है। सिंगाजी कहते हैं– इस शरीर के संसार को मैंने खोज लिया है, इसका रहस्य मैंने जान लिया है, जिस दिन तेल खत्म होगा, बाती बुझ जाएगी और घर अँधेरा–सूना पड़ा रहेगा।

अन्त को तरणा, नित नाम सुमरण करणा।। टेक।।
रंग सरुपी बनी सुन्दरी, माया देख मत भूलणा।
ये पवलियों फिर नहीं आवे, लख चौरासी फिरणा।।
धन माल का भरा खजाना, पल में होत बिराणा।
उल्टी पवन चले घट भीतर, उनका करो ठिकाणा।।
अहलो जनम गयो बहुतेरो, माया माही फन्दाणा।
हरि को नाम लियो नहीं सरवण, वेस धरि–धरि मरणा।।
साधु संत के सरणे रहना, उपाय कबहु न करना।
कहे जन सिंगा सुणो भाई साधौ, रह्या राम के सरणा।।

रोज प्रभु नाम का स्मरण करना ताकि अंत समय उद्धार हो सके। माया एक सुन्दर स्वरूप वाली स्त्री है, उसे देखकर सब कुछ

भूल मत जाना। मोहित मत होना। यह जन्म पुनः नहीं आएगा। चौरासी लाख योनियों में फिर भटकना पड़ेगा। धन–माल से भरा हुआ खजाना पल भर में बिराणा हो जाएगा। पराया हो जाएगा, और अंत समय सब कुछ छोड़कर जाना पड़ेगा। उल्टी श्वाँस शरीर के भीतर चल रही है अर्थात् मृत्यु का समय नज़दीक आ रहा है उसकी चिंता करो। माया के फन्दे में जीवन का बहुत–सा समय व्यर्थ ही चला गया। हरि का नाम हे श्रवण! तूने नहीं लिया और नाना वेष धारण कर, अनेक तरह का शृँगार कर घूमता रहा। सिंगाजी कहते हैं कि–हमेशा साधु–संत के सत्संग में रहना, उपद्रव या पाप कर्म नहीं करना, ताकि अंत समय राम चरणों का सान्निध्य मिल सके।

हीरा हृदय धरो हरि नाम, अरे भई नहीं दौलत से काम।।टेक।।
हीरा लाल पदारथ दौलत, सब माया का मुकाम।
या ठगनी ने सब जग मोह्यो, क्या सुबह क्या शाम।।
त्रिवेणी की निरमल धारा, बिरला करे अस्नान।
साँचो संत हीरा को परखे, समरथ से पायो ज्ञान।।
तीरथ बरत अंकवारे पारथेश्वर, झूठा है संसार।
ऐसी भक्ति ना होवे भाई, ऐ तो है विश्राम।।
साँची कहूँ परतीत न आवे, नहीं माने संसार।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधौ, जम निकाले चाम।।

हृदय में हीरे के समान अनमोल हरि के नाम को धारण करो तथा सांसारिक धन–दौलत से नाता तोड़ो। हीरा, लाल, आदि सारे पदार्थ और अन्य धन–दौलत सब माया का मुकाम है। माया ठगणी ने सुबह–शाम सारे संसार को मोह रखा है। त्रिवेणी (इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना का संधि स्थल) की निर्मल धारा में कोई विरला साधक ही स्नान करता है। गुरु से ज्ञान प्राप्त कर कोई सच्चा संत, ब्रह्म रूपी

हीरे को परखता है। यह संसार झूठा है। तीर्थ–व्रत और पारथेश्वर की पूजा से ईश्वर की भक्ति नहीं होती है। सिंगाजी कहते हैं–मैं सच कहता हूँ तो संसार विश्वास नहीं करता है और अंत में यमराज चमड़ी उधेड़ता है। तब सारे दुःख तकलीफ का पता लगता है।

झूठी जाप जपो मत कोई, पहचाने गति होई।। टेक।।
भोपा घुमाये भूत मनावे, रमन धमन दोई जागे।
भैरों आवे करे लुटावन, पत्थर से पूत माँगे।।
कृष्ण महादेव आप कहावे, सोई बसत पराया।
जो कोई उनका सुमरन करे, सो भी मुक्ति नहीं पाया।।
शिव, सनकादि आदि ब्रह्मादि, सोई पार नहीं पाया।
अपरम्पार भरे जग माँही, सतगुरु ही बतलाया।।
बिन देही का साहब मेरा, व्याप रह्यो घट माही।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधौ, सिंगा सहज समाया।।

झूठा जाप कोई मत जपो। झूठा जाप करने से मुक्ति नहीं मिलेगी, सद्गति तो निरंजन ब्रह्म को पहचानने से ही होगी। भोपा घुमाकर भूतों को मनाया जाता है। जागरण किया जाता है। भैरों को पूजा जाता है। पत्थर के देवता से पुत्र माँगा जाता है। पुत्रोत्पत्ति की कामना की जाती है। लोग ढोंग करके कृष्ण और महादेव का रूप धारण कर लेते हैं और कृष्ण महादेव स्वयं को बताने लगते हैं। रूप धारण करने से वे नहीं मिलते, यहाँ तक कि उनका स्मरण करने से भी मुक्ति नहीं मिलती, क्योंकि वह निर्गुण ब्रह्म को पा नहीं सके। उसकी महिमा का पार न पा सके। वह ब्रह्म किसी खास रूप में न होकर संपूर्ण संसार में व्याप्त है। उसे पाने की राह सतगुरु ही बतला सकता है। मेरा साहब तो बिना देही का है। उसका शरीर नहीं है। वह हृदय में ही बसा हुआ है। सिंगाजी उस ब्रह्म में उस सहज

समाधि में सहज ही समा गया। ध्यानस्थ हो गया। लवलीन हो गया।

क्यों चिल्लाते हो साहब, नहीं है संतो बहराइ।। टेक।।
पंडितजी तो पुराण बाँचे, शब्द सुनावे साँचे–साँचे।
अन्धयारा दीपक नीचे, बिना प्रेम साहब नहीं रीझे।।
सुमिरन ऐसा करो कि जैसी, मकर तार लगी डोरी।
मुल्ला होकर बाँग पुकारे, बंद किये मस्जिद के द्वारे।।
हाट घाट जिन पर रखवारे, महबूब की बाट निहारे।
अल्ला परवर दिगार, खुदावन्त करीम मुजरा मेरा।।
साधु होकर हाथ उठावे, धूनी जलाकर खाक रमावे।
कर सिद्धि–कानून बढ़ावे, उनने गुरु गोविन्द नहीं पावे।।
भवसागर में आन उरझना, उसके भरा हलाहल जहरा।
राम कहूँ तुला ने घेरा, कृष्ण कहूँ मिथुन का डेरा।
वो बारह रासी से न्यारा, अजपा से कोई करो विचारा।।

ईश्वर प्राप्ति के लिए किये जाने वाले बाह्याडम्बरों पर चोट करते हुए सिंगाजी कहते हैं कि–हे संतों! तुम चिल्ला–चिल्लाकर भगवान का नाम क्यों पुकारते हो? मेरा स्वामी (वह ब्रह्म) बहरा नहीं है। पंडित पुराण बाँच–बाँचकर सच्चे–सच्चे शब्द सुनाते हैं, पर उससे वह स्वामी नहीं रीझता। यह कार्य तो वैसा ही है, जैसे दीपक के नीचे अँधेरा रहता है। बिना प्रेम के स्वामी द्रवीभूत नहीं होता। स्मरण ऐसा हो जैसे मकरी का सारा ध्यान उसके मुँह से निकलने वाले डोरे में लगा रहता है। मुल्ला मस्जिद में जाकर मुर्गे के समान बाँग दे देकर अल्लाह को पुकारते हैं। बाज़ार और घाट पर रखवारे खड़े हैं। महबूब की राह देखते रहते हैं। मेरी उपस्थिति वहाँ मैं दर्ज कराता हूँ, जहाँ परवर दीगार अल्लाहा खुदावन्त करीम है। साधु होकर जो हाथ

उठाता है, क्रोध करता है, धुनी जलाकर शरीर पर भभूत लगाते हैं, जो सिद्धि करते और अनेक नियम धरम बनाते हैं, उनको गोविन्द नहीं मिलते हैं। संसार सागर में आकर अनेक उलझनों में जीव फँस जाता है। इसमें हलाहल जहर भरा हुआ है। राम कहूँ तो तुला राशि ने उन्हें घेर रखा है, कृष्ण कहू तो मिथुन राशि ने घेर रखा है, सिंगाजी कहते हैं कि–वह ईश्वर तो बारह राशियों से अलग है, अछूता है, उसे अजपा जाप करके ही विचारा जा सकता है। पाया जा सकता है।

ऐसा मरना मरो संत भाई, बहुरि जनम नहीं धरणा।।टेक।।
नर देही नारायण दीनी, नुगरा कबहुँ न रहना।
नुगरा आदमी पसु बराबर, और कहाँ लौ कहना।।
बरन–बरन की गउ दुहाई, एक बासण में धरना।
माखन–माखन संतों ने पाया, बासण का क्या करना।।
नद्दी नाळा सब जुड़ी आया, तब दरियाव कहाना।
गंगाजी की मोटी महिमा, देसों देस पुजाना।।
अगला आवे अगन का पूला, आपन पानी होना।
सब जानौ पर रहो अजाना, लेवो तत्व पहचाना।।
संतन के अधीन रहना, उपाव कभी न करना।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधौ, साधु सदा दीवाना।।

संतों! ऐसा मरण (मृत्यु) हो ताकि फिरसे जन्म नहीं लेना पड़े। मनुष्य की देही नारायण ने दी है। नुगरा (बिना गुरु से दीक्षा लिये) कभी नहीं रहना। बिना दीक्षा लिये हुए व्यक्ति पशु समान है, मैं और कहाँ तक कहूँ। अनेक रंग की गायों का दूध निकला, उसे एक बर्तन में रखा। माखन–माखन संतों ने प्राप्त कर लिया, उसके बाद इस शरीर रूपी बर्तन का क्या करना। नदी नाले सब इकट्ठे होकर एक

हो गये तब तालाब कहलाया अर्थात् सभी नाड़ियों के जरिए साधना के मार्ग से वहाँ पहुँचे। जहाँ ब्रह्मरंध्र है, सरोवर भरा है। गंगाजी की महिमा अपार है, जिसकी देश–देश में पूजा होती है। सिंगाजी कहते हैं कि–कोई व्यक्ति अग्नि की ज्वाला के समान क्रोधित होकर अपनी ओर आये तो हमें पानी के समान शीतल हो जाना चाहिए। सब जानते हुए भी संसार में अनजान बनकर रहना और परम तत्त्व को पहचान लेना। संत जनों के अधीन रहना और उपद्रव (उल्टा कार्य) कभी नहीं करना। साधु तो ब्रह्म ध्यान में सदैव तल्लीन दीवाने रहते हैं।

टीप– अनेक रंग की गायों से तात्पर्य षटचक्र उसकी पंखुड़ियों और उनके वर्णों से है।

यों जीतो मेरे भाई कायागढ़, मैं रस्तों देउँ बतायी।। टेक।।
मन अमृत की जीत कर लीजों, ममता पीछे हटायी।
पाँच–पच्चीस तुम प्रगट ही मारो, सुन्न में करो लड़ाई।।
काम–क्रोध ब्रह्म अग्नि पर जारो, ज्ञान की छुरी चेतायी।
शील का बख्तर पेरो तन पर, भरम की बुर्ज़ गिरायी।।
छः सौ इक्कीस हजार बाण का, तन में राखो समायी।
इस तन को तुम छिन–छिन बेधो, मूरत सूरत में जमायी।।
पाँच–पच्चीस जीवत ही मारौ, मुआ पीछे कछु नाही।
सूरा होय तो सन्मुख जूझे, कायर को मग नाही।।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधौ, कासे कहूँ समुझायी।
ये नर देह फिर नहीं आवे, कौड़ी बदले गँवायी।।

मेरे भाई! इस प्रकार से काया के दुर्ग को जीतो। मैं तुम्हें रास्ता बता देता हूँ। मन से अमृत को जीत लेना। ममता से पीछे हटा दीजो। पाँच–पच्चीस को तुम खुले आम मार देना अर्थात् पाँच

कर्मेन्द्रियाँ और उनसे जुड़े पच्चीसों प्रकार की विषय वासनाओं को तुम पहले मारना, फिर शून्य में लड़ाई लड़ना। (पाँच तत्त्व और पच्चीस प्रकृति) साधना करना। काम, क्रोध, को ब्रह्म की अग्नि पर जलाकर ज्ञान की छुरी को तेज करना। शील का शरीर व कवच पहनना और संदेह (भरम) के किले को ढहा देना। इक्कीस हजार छः सौ। बाण को शरीर में रखो अर्थात् इतनी साँसे चौबीस घण्टे में चलती है। इसे शरीर में रखो। इनसे शरीर को तुम क्षण–क्षण बेधते रहो, अर्थात् रोम–रोम से निरंजन का स्मरण करते रहो, तब उस ब्रह्म में तुम्हारा ध्यान समाएगा। विषय वासनाओं को तुम जीते जी ही मार डालो, क्योंकि मरने पर कुछ नहीं होगा। इस प्रकार साधना के रणक्षेत्र में जो शूरवीर होगा, वही संघर्ष करेगा, कायर व्यक्ति के लिए कोई रास्ता नहीं है। सिंगाजी कहते हैं कि–यह मनुष्य शरीर फिर नहीं मिलेगा। इतने अमूल्य शरीर और अवसर को कौड़ी के मोल गँवाना नासमझी है।

कायागढ़ का तुम, देखो तमाशा जकड़ा।। टेक।।
कायागढ़ में बड़े–बड़े जोधा, सूरवीर हो लड़ता।
कायागढ़ में बाजे बजत हैं, अनहद का हो झड़ता।।
काला पीला रंग अपारा, बिजली कैसा तड़का।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधौ, पंचम निसाण उडता।।

इस शरीर रूपी गढ़ का तुम जबरदस्त खेल देखो। इस शरीर में पाँचों इन्द्रियाँ हैं। जो बड़े–बड़े योद्धाओं के समान हैं और काम क्रोध, मद, लोभ, मोह के सूरमा हैं, जो निरंतर लड़ते रहते हैं। दूसरी ओर इसी शरीर रूपी दुर्ग के भीतर अनाहत के बाजे बज रहे हैं। वहाँ काले–पीले अनेक तरह का रंग हैं तथा बिजली की तड़क के समान प्रकाश की चमक है। हृदय कमल जहाँ अनाहत चक्र है, जिसके

भीतर का रंग काला है और मूलद्वारे मूलाधार चक्र है, जिसका रंग पीला है और सहस्त्र दल कमल में बिजली के प्रकाश के समान तड़क है। सिंगाजी कहते है–वहाँ पाँच प्रकार के निसान उड़ते हैं। अर्थात वहाँ जाकर विजय प्राप्त होती है।

काया में गुलजार बागों मत जा, तेरी काया में गुलजार।। टेक।।
मन माली परमोद लेकर, कर संयम की बाड़।
दया पौद सूखन नहीं पावे, क्षमा नीर ले डार।।
करनी क्वारी बीज की, रहनी भर रखवार।
दुरमति काग बाग में बैठे, क्यों नहीं देत बिडार।।
चित चम्पा बुध मोगरा, फूल रही फुलवार।
मुफ्त कली की अबेर के, गुञ्ज पहने गले हार।।
काया नगर गुलजार है, महिमा अपरम्पार।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधौ, भक्ति लागी ख्वार।।

मनुष्य! तेरे शरीर में ही सुन्दर बगीचा है। तू पेड़–पौधों से भरे भौतिक बगीचे में नहीं जा। मन को माली बना ले और प्रमुदित होकर संयम की बाड़ लगा। दया का पौधा सूखने न पाए इसके लिए जरूरी है कि उनमें क्षमा का जल तू निरंतर डालता रह। तेरे द्वारा किया गया कर्म ही क्वांरा (पवित्र) बीज है। इस बाग की तू अपनी रहनी से, आचरण से रखवाली करता रह। कुबुद्धि रूपी कौए बगीचे में बैठे हैं, तू उनको भगाता क्यों नहीं? तेरा चित्त चम्पा के समान, बुद्धि मोगरा के समान है, जिससे तेरे जीवन की बगिया खिल रही है। मुक्ति रूपी कली को संभाल कर रख ले और गले में गुँजों का हार पहन ले। काया नगर के भीतर इस तरह सुन्दर उद्यान है, जिसकी महिमा अपरम्पार है। सिंगाजी ने इस बात पर जोर दिया है कि काया के भीतर जो आध्यात्मिक बाग है उसका संवर्धन, परिवर्तन एवं संरक्षण भक्ति मार्ग से नहीं, बल्कि ज्ञान मार्ग से किया जाता है।

तज दिये प्राण काया हो कैसी रोई, छोड़ चला निरमोही।।टेक।।
मैं जाणू काया संग चलेगी, याके कारण मल–मल धोई।।
ऊँचे–नीचे मंदिर छाड़े, गाय भैंस घर घोड़ी छोड़ी।
तिरिया तो कुलवंती छोड़ी, और छोड़ी पुत्रन की जोड़ी।।
मोटी छोटी डांडी मँगाई, आठ काठ की घोड़ी।
चार जणामिल ले गये हैं, फूंक दई फागुण जसी होरी।।
भोली तिरिया रोवण लागी, बिछुड़ गयी मोरी जोड़ी।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधौ, जिन जोड़ी तिन तोड़ी।।

प्राण शरीर को एक दिन छोड़ देता है। वह निरमोही सरीखा छोड़कर चला जाता है। व्यक्ति अज्ञान वश समझता है कि यह शरीर साथ चलेगा। इसके लिए वह इसे मल–मल कर धोता है और पता चलता है शरीर यहीं छूट गया, जीवन को अकेला ही जाना पड़ता है। ऊँचे–नीचे भवन छोड़ना पड़ता है। गाय, भैंस घोड़ी सब छोड़कर चले जाना होता है। कुलवंती पत्नी छोड़ना पड़ती है और पुत्रों की जोड़ी भी छोड़कर चले जाना होता है। छोटी–छोटी डांडी (सीधी.. लकड़ी) मँगायी जाती है। दो सीधी लकड़ियों पर छोटी–छोटी आठ लकड़ियों को बाँधकर घोड़ी (अर्थी) बनायी जाती है। चार लोग काँधे पर उठाकर ले जाते हैं और फागुन में जिस तरह होली में आग लगायी जाती है, वैसे ही शरीर को फूँक दिया जाता है। भोली स्त्री रोती रह जाती है कि उसकी (पति–पत्नी) जोड़ी बिछुड़ गयी। सिंगाजी कहते हैं कि–जिसने इस संसार में नाते–रिश्ते जोड़े थे, वही जीव सब नाते–रिश्तों को तोड़कर चला गया। दूसरा अर्थ यह कि उस ईश्वर ने ही सम्बन्ध जोड़ने की प्रेरणा दी, उसी ने रिश्ते जोड़े और उसी ने सम्बन्धों को तोड़ा है।

भजन है तीन लोक से बड़ा, जिनके सिर पर साहब खड़ा।।टेक।।

धरती माता कुंजर कहाये, आकाश सत्त पर खड़ा।
भर–भर प्याला पिलाया सतगुरु ने, सुन्न सिखर गढ़ चढ़ा।।
सिंगा स्वामी बड़ा सख्त है, जाय ब्रह्म से अड़ा।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधौ, जिनका अटल झंडा गड़ा।।

भजन तीन लोक से बड़ा है, जो सच्चे मन से हरि भजन करता है, उसके सिर पर रक्षार्थ साहब खड़ा रहता है। धरती माता हाथी के समान है। भारी है विशाल है। आकाश सत्त पर खड़ा हुआ है। बिना किसी सहारे के आकाश सत्य के बल पर खड़ा हुआ है। गुरु ने ज्ञान का भर–भर प्याला पिलाया, जिसके बल पर साधना का मार्ग प्रशस्त हुआ। शून्य शिखरगढ़ पर चढ़ गया। प्राणायाम क्रिया द्वारा ध्यान योग से ब्रह्म कमल तक पहुँच गया। सिंगाजी साधना के मार्ग पर दृढ़ हो कर चला है, इसी से वह ब्रह्म से जाकर मिला है। सिंगाजी कहते हैं– हे संत जनों उसी ब्रह्म का अटल झण्डा सृष्टि में गड़ा हुआ है। दूसरी ओर जो भक्त भजन करते हुए ब्रह्मलीन हो जाता है, उसका भी अटल झण्डा गड़ जाता है।

यहाँ भजन से तात्पर्य हरिभजन से तो है ही साथ ही साथ सच्चे मन से ध्यान करने से है।

गुरु की शरण में रहूँगा, हऊँ मलि–मलि मैल खऽ धोऊँगा।टेक।।
धन दौलत और माल खजीना, इनखऽ त्यागी न रहूँगा।
भाई बंधु और कुटुम्ब कबीला, इनसऽ न्यारो रहूँगा।।
गुरु सबद को सुमरण करूँगा, उनको ही ध्यान करूँगा।
कहे जन सिंगा सुन रे राजा, सदगुरु को चाकर रहूँगा।

भामगढ़ के राजा लखमेसिंह के यहाँ सिंगाजी नौकरी करते थे। गुरु मनरंगगीर से दीक्षा लेने का निश्चय कर लेने पर वे राजा

को अपनी नौकरी छोड़ने का निर्णय बताते हुए तथा गुरु की शरण में रहने का संकल्प दोहराते हुए कहते हैं– मैं गुरु की शरण में रहूँगा। मैं जीवन के मैल को मल–मल कर धोऊँगा। धन, दौलत, माल–सामान और खजाने को त्याग दूँगा। भाई, सगे सम्बन्धी, परिवार और समाज के लोगों से अलग रहूँगा। गुरु द्वारा दिये गये मंत्र का स्मरण करूँगा, जाप करूँगा और उनका ही ध्यान करूँगा। हे राजा! अब मैं किसी क़ा सेवक न रहते हुए अपने गुरु की ही सेवा करूँगा। उन्हीं का चाकर रहूँगा।

नहीं माया के संत कोई भूखे, अब तक सिपाही बनकर झूके।टेक।।
जुग सवा हमने करी चाकरी, तब तक तुमको झूके।
काम क्रोध हम राखें बगल में, तुम देखो नजरा भर के।।
झूठा था धन धाम कबीला, अब तो शरण गुरुजी के।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधौ, अबका अवसर नहीं चूके।।

सिंगाजी की भेंट गुरु मनरंगगीर से हो जाने पर उन्होंने मनरंगगीर को अपना गुरु बनाने का निश्चय किया। वे नौकरी छोड़ने अपने स्वामी लखाराव के यहाँ पहुँचे। गुरु करने, नौकरी छोड़ने की बात कही और कहा–संत माया के भूखे नहीं होते। हे राजा! अब तक मैं आपका सिपाही बनकर आपके समक्ष झुकता रहा। मैंने सवा युग (पन्द्रह वर्ष) तक आपकी चाकरी की, सेवा की तब तक तुम्हारे अधीन रहे। आपका हुक्म बजाया। आज्ञा मानी। काम, क्रोध को हमने बगल में दाब रखा है, अर्थात् अब तक मैं इनके वश में था, अब ये मेरे वश में है। इसे तुम अब अच्छी तरह देख लो। समझ लो। धन, मुकाम और कबीला (परिवार) सब झूठा था, एक दिन साथ छोड़ देने वाला है। अब मैंने गुरुजी की शरण में जाने का निश्चय कर लिया है। सिंगाजी कहते हैं कि–मैं इस अवसर को हाथ से नहीं जाने दूँगा।

तुम हो परगना का सरदार, अब लाज राखगो करतार।।टेक।।
तीन सौ बाँसठ खेड़ा तुम्हारा, दूनो चलत बणत व्यापार।
अंजल आटा उठा हमारा, गुरु ने तत्व बतायो सार।।
भाई बंधु और कुटुम्ब कबीला, तुमरो जुग जिये परिवार।
कहे जन सिंगा सुनो रे राजन, आखिर कंठ में जय ओंकार।।

नौकरी छोड़कर जाते समय सिंगाजी राव लखमेसिंह को आशीर्वाद देते हुए कहते हैं– तुम सारे परगना के सरदार हो। तुम्हारी रक्षा ईश्वर करें। तुम्हारा सहारा भगवान हो। तुम्हारे पास तीन सौ बाँसठ गाँवों की जागीरदारी है। तुम्हारा व्यापार और साम्राज्य दूना हो जाए। तुम्हारा हमारा सम्बन्ध इतने ही दिन का था। अब अंजल (योग) आटा समाप्त हो गया। (कहावत है– इतने ही दिन का अंजल पानी था) गुरु ने सार तत्त्व बता दिया है। भाई, सम्बन्धी, कुटुम्ब, समाज और तुम्हारा परिवार जुगजुग जिये। सिंगाजी कहते हैं– राजा यह हमारी आपकी आखिरी जय ओंकार जी की।

विशेष : वैसे सामान्य तौर पर अभिवादन एवं परिचय राम–राम कहकर किया जाता है, परन्तु निमाड़ में राजपूतों द्वारा अभिवादन एवं परिचय करते समय जय ओंकारजी की कहने की परम्परा है।

मैं चाकर गुरु मनरंग का, मोहे वचन दिया उस दिन का।।टेक।।
ज्ञान ध्यान का धनुष चढ़ाया, सुमरन किया हरिनाम का।
माल मसाला कछु नहीं लागे, भजन करूँ निसिदिन का।।
इंगला पिंगला सुषमना मिलकर, तखत बनाया ज्ञान का।
जे पऽ बठी न सतगुरु गाजे, ताळा खुल्या सब तन का।।
गुपत हुई नऽ परगट हुय्या, मैल धोया सब तन का।
त्रिकुटी ऊपर हीरा झलके, कोट बना कंचन का।।
रावण मार्या अहिरावण मार्या, दिया जीत का डंका।

कहे जन सिंगा सुनो भाई साधौ, सौंपी दियों गढ़ लंका।।

मैं गुरु मनरंग का सेवक हूँ, मुझे गुरु ने मंत्र दिया है। मैंने ज्ञान ध्यान का धनुष खींचा है और हरिनाम का स्मरण किया है। हरि के भजन करने में माल–मसाला कुछ भी नहीं लगता है। इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियों को मिलाकर मैंने ज्ञान का तखत बनाया है, जिस पर बैठकर सतगुरु गर्जना करता है, जिससे कि शरीर के सब ताले खुल गये। अर्थात् त्रिकुटी स्थल पर ध्यान लगाया और अनाहत शब्द सुनायी दिया, जिससे देह जनित सारा मोह और सारी चिन्ता समाप्त हो गयी। जब तक ज्ञान नहीं था। तब तक ब्रह्म छुपा हुआ था, जैसे ही ज्ञान हुआ तो वह ब्रह्म प्रकट हो गया और शरीर का सारा मैल, सारे विकार जाते रहे। त्रिकुटी के ऊपर ब्रह्म रूपी हीरा झलक रहा है, वहाँ सोने का परकोटा बना हुआ है। वहाँ पहुँच कर रावण और अहिरावण सरीखे राक्षसी विकारों को समाप्त कर जीत का डंका बजा दिया है। सिंगाजी कहते हैं– इस तरह लंका का गढ़ सौंप दिया है। अतः जीव को उसके गन्तव्य पर पहुँचा दिया है। ब्रह्माण्ड पर विजय हासिल कर ली है।

सबका और कहीं मन लगा।। टेक।।
मेरा मन लगा सत नाम से, हटकर लोग अभागा।
जरती अगन में कंचन डारा, सोने में डारा सुहागा।।
हंस की चाल हंस पहचाने, क्या जाने कारो कागा।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधौ, जीव ब्रह्म हो जागा।

सब लोगों का मन और कहीं लगा है। मेरा मन सत्य नाम से लग गया है। लोग अभागे हैं, जिन्होंने इस जन्म की कीमत नहीं पहचानी और हठ करके संसार के मोह में फँसे हुए हैं। सिंगाजी कहते हैं कि–मैंने ज्ञान की साधना की आग में कंचन जैसे शरीर को

डाल दिया और जीव रूपी सोने में ब्रह्म रूपी सुहागा मिला लिया। हंस की चाल को हंस ही पहचान सकेगा, कौवा नहीं। साधक की गति को साधक ही पहचानेगा, सांसारिक पुरुष नहीं। वे कहते हैं कि–हे संतों! सुनो जीव ब्रह्म होकर जाग गया है। जीव को आत्म ज्ञान हो गया है।

हीरो हरदय हरि का नाम, मोहे दवलत से नहीं काम।। टेक।।
हीरा मोती लाल जवाहर, यही माया का फंदा।
ये ठगनी ने कई घर ठगिया, क्या सूबे क्या साम।।
तिरवेणी की निरमल धारा, विरला जन करते असनान।
साँचो हीरो संत परख दे, पावे समरथ से ज्ञान।।
तीरथ बरत को पारथेश्वर, झूठो छे अज्ञान।
ऐसी मुक्ति नहीं होय भाई, ये तो है विश्राम।।
साँच कहूँ परतीत न आवे, झूठो मरो अज्ञान।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधौ, जम निकालऽ चाम।।

मैंने अपने ह्रदय में हरि नाम का हीरा प्राप्त कर लिया है। अब मुझे सांसारिक धन–दौलत से कोई वास्ता नहीं है। संसार में पाये जाने वाले हीरे, मोती, लाल, जवाहर सब माया के फंदे हैं। माया ठगनी है, तथा इसने कई घर ठगे हैं। इसका ठगोरापन सुबह शाम निरंतर चलता रहता है। त्रिवेणी (इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना का मिलन बिंदु) की धारा निर्मल है, उसमें कोई विरला साधक ही स्नान (आनन्द) करता है। सच्चे हीरे की पहचान (ब्रह्म की परख) संत के ही पास है। उसे प्राप्त करने का ज्ञान समर्थ गुरु से ही मिलता है। तीर्थ करके और व्रत करके पारथेश्वर ईश्वर को पूजना अज्ञान है, इससे मुक्ति नहीं होती, केवल मन को झूठा संतोष भर करा दिया जाता है। सिंगाजी कहते हैं– सच्ची बात मैं कहता हूँ तो विश्वास

नहीं करते और झूठे अज्ञान के पीछे मरते हो और एक दिन यमराज आकर चमड़ी उधेड़ देगा, उस दिन शायद कुछ समझ में आये तो किस काम का। शरीर से जीव निकल जाएगा।

मैं क्या करूँ गरीब बिचारा, मेरा कछु न चलता सहारा।।टेक।।
असमान सा गैबी असमाना, बीच गैब का डेरा।
मनुआँ मेरा गस्ती जागे, जहाँ गहरे घुरत नगाड़ा।।
जमीं का नीर असमान चढ़ेगा, पीवेगा कोई प्यारा।
बिन बादल जहाँ बिजली चमके, बरसे अखण्ड धारा।।
चाँद–सूरज जहाँ कछु नहीं, दीसे, कोट भानु उजयारा।
जिनके नैन सुन्न में लागे, मृतक दीसे सारा।।
मनुआ निर्गुण की कर अगवानी, निरखे अपरम्पारा।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधौ, छिन में ब्रह्म निहारा।।

मैं गरीब बेसहारा क्या कर सकता हूँ। मेरा कुछ भी सहारा नहीं है या मेरा कुछ भी उपाय नहीं चलता। शरीर के भीतर आसमान जैसा भी एक आकाश है, उसके बीच में शून्य का डेरा है। मेरा मन वहाँ गस्त देता हुआ जाग रहा है। वहाँ गहरे और जोर–जोर से नगाड़ा (अनहद नाद) बजता है। धरती का जल आसमान पर चढ़ेगा और उस जल को कोई प्रिय व्यक्ति ही पी सकेगा। अर्थात् कुण्डलिनी शक्ति मूलाधार चक्र से नीचे से ऊपर की और षटचक्रों का भेदन करती हुई ब्रह्मरंध्र तक जाएगी और उसमें से झरते हुए अमृत का पान करेगी। वहाँ बिना बादल के बिजली चमकती है और अखण्ड जलधारा बरसती है। वहाँ बिना चाँद और सूर्य के करोड़ों सूर्यों के प्रकाश के समान उजेला रहता है अर्थात् निरंजन ब्रह्म की ज्योति ही इतने रूपों में मस्तिष्क स्थित ब्रह्माण्ड में दिखायी देती है, जिनके नेत्र शून्य में लगे हुए हैं। अर्थात् जिनका ध्यान उस शून्य स्थित शून्य ब्रह्म

में लगा रहता है। उसे यह सांसारिक प्रसार मृतक–सा अर्थात् निर्जीव लगता है। सिंगाजी कहते हैं–हे मन! तू निर्गुण ब्रह्म की अगवानी करके उस अपरम्पार ब्रह्म को देख और क्षण में ब्रह्म को निहार।

संगी हमारा चला गया, हम भी चालण हारा।
पेंडा था सो उठ गया, चलणा निरधारा।। टेक।।
एक साथ दोनों गये, दो से गये चारा।
चार जात पाँचों गये, गयो सब संसारा।।
कूड़ा करकट को छोड़, अनुभव पहले लेणा।।
खाल्या नाल्या त्याग, सरवर जल पीणा।।
ये जल बसे अमीरस, हलका फूलवासा।
अग्गम पिच्छम की, गगन वहीं, परकासा।।
कहे जन सिंगा, मोहे मिल्या मनरंगा।
अष्टकमल का फूलणा, काटी दियो जम का फंदा।

हमारा साथी चला गया, हम भी चलने की तैयारी में है। हमारा डेरा उठ गया। एक साथ दोनों चले गये और दो के साथ चार चले गये। चार के साथ पाँच और चले गये और सब संसार चला गया। अर्थात् जीव के चले जाने के साथ ही वह शरीर भी चला जाता है। शरीर के साथ ही दस इन्द्रियाँ भी निष्क्रिय हो जाती हैं तथा पाँच तत्त्व भी पाँचों तत्त्व में विलीन हो जाते हैं। यह संसार विषय वासनाओं के कूड़े–करकट से भरा हुआ है, इसे छोड़ कर पहले अनुभव ग्रहण करना है। ब्रह्म तक जाने का प्रयास करना है। खाल्या, नाल्या, यानी छोटे–छोटे नदी नालों को छोड़कर बड़े गहरे तालाब का जल पीना चाहिए। अर्थात् संसार के छोटे–छोटे सुखों को त्याग कर ब्रह्म मिलन का सुख प्राप्त करना चाहिए। उस जल में अमृत

तत्त्व हैं। यहाँ फुलवारी फूली है। वहाँ गगन मंडल में आगे–पीछे सब तरफ से प्रकाश हो रहा है। सिंगाजी कहते हैं कि–मुझे मनरंग स्वामी गुरु के रूप में मिल गये हैं, जिन्होंने मेरे अन्दर के अष्टकमल दल को खिला दिया है। जहाँ ब्रह्म का प्रकाश है, वहाँ जाने का मार्ग बताया और यमराज के फंदे को काट दिया।

कोई न मिल्यो म्हारा देस को, जाके संग लागूँ।
सतगुरु सरण हम सेईयाँ, असत न भाखू।। टेक।।
देस पति चल देस को, उनने धाम लखाया।
चिन्ता डाकन सर्पिणी, काट हुंडी लाया।।
मन को चहुँ दिसि छोड़ दे, साहब ढूँढ लावे।
ढूँढे तो हरि न मिले, घट में लौ लावे।।
लाल कहूँ लाली नहीं, जरदा भी नाहीं।
रूप कहूँ तो है नहीं, व्यापक सब माहीं।।
पानी पवन ले पातला, जैसे सूरज को धाम।
जैसे ससि की चाँदनी, ऐसा है मेरो राम।।
पाँव धरन को ठोर नहीं, मानो मत मानो।
मुक्ति सुधारो सिंगा, अपनी जीवत पहिचानो।।

कोई भी मेरे देश का नहीं मिला, जिसके संग मैं जा सकूँ। सिंगाजी का देश निर्गुण ब्रह्म का वह स्थान है, जहाँ शून्य मंडल में वह निवास करता है। वह शरीर के भीतर ही है। सतगुरु की शरण में जाकर हमने उनकी सेवा की। मैं असत्य नहीं बोल रहा हूँ। सतगुरु ने ही स्वामी के देश का पता बताया। वह स्थल दिखाया। चिंता सर्पिणी है, डाकिनी के समान है। वह जीवन की हुंडी को कुतर रही है। काट रही है। मन चारों दिशाओं में साहब (ब्रह्म) को ढूँढने की कोशिश करता है, लेकिन वह बाहर नहीं मिलता। वह तो अपने

अन्दर ही ध्यान लगाने पर मिल सकता है। उसे लाल कहू तो उसमें लाली नहीं है। वह पीला भी नहीं है, उसका कोई रंग नहीं है, पर वह सबमें व्याप्त है। वह पानी और हवा से भी पतला है, जैसे सूर्य में धूप निहित है और चन्द्रमा में चाँदनी समाहित है। वैसा ही मेरा राम (ब्रह्म) सब में समाया है, वहाँ पाँव रखने की भी जगह नहीं है। अर्थात् वहाँ भौतिक शरीर से नहीं सूक्ष्म शरीर का ध्यान करके ही जाया जाता है। सिंगाजी कहते हैं– जीते जी ही अपनी मुक्ति को सुधार लो। मृत्यु उपरान्त कुछ नहीं हो सकेगा।

मैं तो जानू साँई दूर है, मैंने पाया नेड़ा।।
रहनी रही समरथ भया, मुझे परखना तेरा।। टेक।
तुम सोना हम गहना, मुझे लागा टांका।
तुम बोलो हम देह धारी, बोलो कई रंग भाषा।।
तुम तरुवर हम पंछिड़ा, बैठे एक ही डारा।
चोंच मार फल भांजिया, फल अमृत सारा।।
तुम चंदा हम चाँदनी, रहनी उजियारा।
तुम सूरज हम घामला, साहब सब जग पूरा।।
तुम दरियाव हम मछली, विश्वास का रहना।
देह गल के मिट्टी हुआ, जल में जल समाना।।
तुम वृक्ष हम बेलड़ी, मूल लिपटाना।
कहे सिंगा पहचान ले, दरियाव ठिकाना।।

मैं तो समझता था कि साईं (ईश्वर) दूर है, मैंने उसे एकदम नजदीक पाया। जब तक ज्ञान नहीं होता, तब तक ईश्वर दूर लगता है, ज्ञान हो जाने पर वह ईश्वर हमारे पास, हमारे भीतर ही अनुभव होने लगता है। ध्यान मार्ग और साधना मार्ग के द्वारा भक्त उस ईश्वर को पाने में समर्थ हो जाता है। ब्रह्म और जीव की स्थिति बताते हुए

और उनके आपसी रिश्तों की व्याख्या करते हुए सिंगाजी कहते हैं – हे प्रभुजी! तुम सोना हो और हम गहनों के समान हैं। सोने से गहना बनाते समय जिस प्रकार अन्य धातु का टाँका लगाया जाता है। उसी तरह ब्रह्म और जीव के बीच माया का टाँका लगा हुआ है। तुम बोलने वाले हो और हम देहधारी हैं, तुम चैतन्य हो, तुम कई रंग की भाषा शरीर में आत्मा (चैतन्य) के रूप में रहकर बोलते हो। तुम वृक्ष हो, हम पक्षी हैं। एक ही डाली पर दोनों बैठे हैं। चोंच मारकर फल को फोड़ा तो उसमें से अमृत पाया। साधना के द्वारा ब्रह्म का आनन्द प्राप्त किया। तुम चंदा हो। हम चाँदनी हैं। तुम सूर्य हो, हम धूप हैं। वह साहब सारे संसार में समाया है। तुम समुद्र हो, हम मछली हैं। इसी विश्वास के साथ ईश्वर और जीव रहते हैं। देह गलकर (समाप्त होकर) मिट्टी हो गयी। जल, जल में मिल गया। तुम वृक्ष हो, हम लता के समान हैं, मूल से लिपटे हैं। सिंगाजी कहते हैं– उस ब्रह्म को पहचान कर अपना स्थायी निवास उस विशालतम सागर में बना लो। उससे अपनी मोक्ष की राह प्रशस्त कर लो।।

जम से नहीं डरूँगा, मैं हरि भजन करूँगा।। टेक।।
और सकल मनवा के प्यादे, मैं सरकारी काजी।
काम क्रोध की गर्दन मारूँ, साहेब राखूँ राजी।।
जमीं गलीचा आसमान समीना, नहीं डोरी नहीं खूटी।
बिना पूँजी का भरा खजीना, राह पथ से छूटी।।
सरण तुम्हारे खासे कपड़े, सुरत हमारी डोरी।
अन पावन की मोट जो बाँधी, भई पंथ में चोरी।।
पेड़–पत्र कछु न दीखे, मूल न दीसे डाली।
बिना बेल की परवाय फैली, देखी दृष्टि पसारी।।
पानी से पतला पवन से झीना, बारीक नजर न आवे।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधौ, सतगुरु आन मिलावे।।

मैं हरि भजन करूँगा, यमराज से नहीं डरूँगा और सब लोग मन के वश में हैं, मैं तो सरकारी काजी हूँ। अर्थात् ब्रह्म का ही सेवक हूँ। काम क्रोध की मै। गर्दन मरोड़कर अपने स्वामी को खुश रखता हूँ। यह धरती गलीचे के समान बिछी हुई है और यह आसमान बिना खूँटी और बिना डोरी के टँगा हुआ है। एक आसमान शरीर में मस्तिष्क में भी है, जो बिना खूँटी और बिना डोरी के शून्य में लटका हुआ है। वहाँ बिना पूँजी के खजाना भरा हुआ है। जहाँ सारी राहें अपने पथ छोड़ देती हैं। वहाँ तक जाने में सारे परम्परित रास्ते निष्प्रभावी हो जाते हैं। हे प्रभु! तुम्हारी शरण में सारे कपड़े रूपी आवरण त्यागकर सुरती (स्मृति) की डोरी लगायी है। सांसारिक वासनाओं से भरे हुए जीवन की मोट बाँधी हुई थी, ज्ञान प्राप्त होते ही पंथ में चोरी हो गयी। वासनाएँ समाप्त हो गयी। ध्यान योग में पहुँचने पर उस परम पुरुष रूपी पेड़ की पत्तियाँ जड़े, डालियाँ, कुछ भी दिखायी नहीं देती हैं। बिना बेल की जहाँ शाखाएँ फैली हैं, ऐसा वह सूक्ष्म ब्रह्म नजर नहीं आता है। सिंगाजी कहते हैं– उस सूक्ष्म ब्रह्म को सतगुरु ही आकर मिला सकता है।

रामनौमी पावाँ आज हम रामनौमी पावाँ।।टेक।।
गुरु के वचन आसीष भई भारी, रामही नाम समावाँ।
अन्तः करण की तुम ही जानो, सरण साहब की जावाँ।।
संत मंडली कुटुम्ब कबीला, सिंगा आप बुलावाँ।
दान पुन्न जिनने सब कर पायो, न कोई दुख सतावे।।
पोथी पुराण ग्यारस बतलावे, मुक्ति को जोग न आवे।
नौमी देह या छूट जायगी, आनन्द परमपद पावे।
जहाँ का माल तहाँ रह जावे, मोती गाँठ बँधावे।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधौ, जोत म जोत समावे।

सिंगाजी ने समाधि लेने का निश्चय किया। गुरु द्वारा भी ऐसा संदेशा आया था कि सिंगाजी को अब समाधि ले लेना चाहिए। सिंगाजी ने सावन महीने की शुक्ल पक्ष की नवमीं को समाधि लगाकर देह त्यागने का मन बना लिया। इसी निश्चय को उन्होंने इस भजन में कहा है कि–

हम सावन शुक्ल नवमी को राम को पा लेंगे। समाधि लगा लेंगे। सिंगाजी ने स्वयं उस तिथि को रामनवमी की संज्ञा दी। यह रामनवमी चैत शुक्ल पक्ष की नहीं है। गुरु के आशीर्वाद से हम राम में समाहित हो जाएँगे। ह्रदय की बात तो स्वयं ईश्वर ही जानता है। मैं साहब (स्वामी, ब्रह्म) की शरण में जा रहा हूँ। संत मंडली, कुटुम्ब, समाज सगे संबंधियों को बुला लिया है। वे दान पुण्य कर रहे हैं, पर मुझे कोई दुःख नहीं सता रहा है। पोथी, पुराण समाधि का दिन ग्यारस को बतला रहे हैं, परन्तु मुक्ति का योग नहीं मिल पा रहा है। सिंगाजी ने पोथी पुराण के बताये दिन का निषेध करते हुए दो दिन पूर्व ही नवमी के दिन देह त्यागने का निश्चय कर लिया– नवमी के दिन यह शरीर छूट जाएगा। मैं आनन्द पूर्वक परमपद प्राप्त करूँगा। उसके बाद जहाँ का माल वहीं रह जाएगा। यह शरीर पृथ्वी लोक का है। यहीं रह जाएगा और जीव जहाँ से आया है, वहाँ चला जाएगा। मैं अपनी गाँठ में ब्रह्मरूपी मोती बाँध लूँगा। सिंगाजी कहते हैं कि–इस तरह ज्योति में ज्योति (जीव मैं ब्रह्म) मिल जाएगी।

गुरु ने दिया परवाना, होत अवेरो धाम को।। टेक।।
हम काजी निरवाणिया, अपरम देस को जाणा।
मूल रचना निज नाम की, अपणा करो रे ठिकाणा।।
जिन कारण तन धारिया, सोई फल पाया।
सदगुरु देव किरपा करी, लिख्या परवाना।।

राह हमारी बारीक है, सागर का रहना।
त्रिकुटी संगम का न्हावणा, जहाँ से पार उतरना।।
सौदागिर सौदा करो, घड़ी पल का रहना।
बिन पैड़ी ये चढ़ना, गुरु शब्द से जाना।।
नाम की जहाज में बैठ के, उतरे भवजल पारा।
सब संतों का ज्ञान है, देखी एक ही सारा।।
ऊपर बेल बिहार है, फल लागे अपारा।
अनुभवी ऊपर चढ़ै, देखों सिंधु समाना।।
सतसंगत में बैठ के, कोई लेवों के बयाना।
मारग छोटा चढ़ी जावो, पावो पद निर्वाणा।।
भव सागर जम लूटसे, करो जबर निसाना।
चैतन होय तू चेती जा, क्या कलुष दीवाना।।
हम पर गुरु कृपा करी रह्या, सोई हम जाना।
मुक्ति की गाँठ बँधाइया, सिंगा सरण समाना।।

सिंगाजी कहते हैं– गुरु ने मुझे ज्ञान दे दिया। अब मैं उनके धाम को जाऊँगा। मुझे देर हो रही है। हम निर्गुण ब्रह्म के सैनिक हैं और अनूठे देश को जाना है, जहाँ ब्रह्म के नाम की मूल रचना रची गई है, वहीं जाकर अपना स्थाई आवास बनाना है। जिसके कारण शरीर धारण किया, उस फल को प्राप्त करना है। सद्गुरु ने कृपा कर पत्र लिख दिया, उस ज्ञान के पत्र को लेकर ब्रह्म के देश में जाना है। हमारी राह बहुत सकरी है। सागर का निवास है। त्रिकुटी संगम में स्नान करना है और संसार सागर से पार हो जाना है। इस संसार में घड़ी पल का रहना है इसलिये सौदागर (मन) जल्दी ही सौदा कर ले अर्थात् नाम स्मरण कर ले। उस ब्रह्म के देश में बिना पैड़ी से चढ़ना होता है। वहाँ गुरु द्वारा दिया शब्द ज्ञान ही सहायक होता है। हरि नाम रूपी जहाज में बैठकर इस संसार सागर से पार उतरना है।

सब संतों के बताये हुए ज्ञान में एक ही सारतत्त्व छिपा हुआ है और वह है निर्गुण ब्रह्म। ब्रह्मरूपी बेल ऊपर आकाश में फैली हुई है। उसमें अनगिनत मीठे फल लगे हुए हैं, वहाँ कोई अनुभवी ही चढ़ सकता है। सत–संगत के माध्यम से उस ब्रह्मानंद का अनुभव मिल सकता है। वह मार्ग छोटा और सुगम है। उसी पर चढ़ जाओ और निर्वाण पद प्राप्त कर लो। नहीं तो इस संसार सागर में यमराज तुम्हें लूट लेगा, इसलिए अपना निवास जबर (ब्रह्म के पास) बना लो। हे जीव! तू चैतन्य होकर सतर्क हो जा। सांसारिक कलुषों के पीछे दीवाना मत हो। गुरु हम पर कृपा कर रहे हैं। यह हमें अनुभव हो रहा है। सिंगाजी कहते हैं–मैं उन्हीं की शरण में जाकर मुक्ति की गाँठ बाँध लूँगा, अर्थात् अपनी मुक्ति सुनिश्चित कर लूँगा।

माता मानो हमारी तुम बात, खजूरी आपण छोड़ी देवा।।टेक।।
खजूरी जलम भूमि आपणी, वहाँ पराचित होय अपार।
खजूरी मऽ छत्तीस कोम बसती, ऊ करी रह्या जीव न पर घात।
कूण हमारे यहाँ सारथी, दूसरो बसावाँ गाँव।
सिंगा की विनती सुण लीजे, सारथी श्री करतार।।

माता! हमारी बात मान लो। खजूरी गाँव अपन छोड़ चलें। खजूरी अपनी जन्म भूमि है, यहाँ अत्याचार अधिक होने लगा है। इस गाँव में छत्तीस कोम (जाति) के लोग रहते हैं, वे स्वार्थवश जीवों पर घात–प्रतिघात कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में अपना यहाँ कोई साथी नहीं है? हमारा साथ देने वाला कोई नहीं है। हम अपना दूसरा गाँव बसा लेते हैं। सिंगाजी कहते हैं– हे माँ! मेरी विनती सुन लो अपना सबसे बड़ा साथी तो भगवान है। वही हमारे जीवन रथ का साथी और सारथी है।

खजूरी जनम स्थान, जहाँ बनी रही बैकुण्ठ धाम।। टेक।।

संवत पन्द्रह सौ छिहत्तर, जनम लियो थपडूँग मऽ।
संवत पन्द्रह सौ इक्यासी, जब आया हरसूद मऽ।
तीन सौ भैंसी संग म लाया, दूध दही उनका घर मऽ।
संवत पन्द्रह सौ अन्ठयान्वे, जब आया भामगढ़ मऽ।
लखाराव घर करी नौकरी, एक रूप्पया महावार मऽ।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधौ, नौबत बाजी निमाड़ मऽ।।

इस पद में सिंगाजी के जन्म स्थान खजूरी और उनके जीवन की घटनाओं की संक्षिप्त जानकारी स्वयं सिंगाजी द्वारा दी गयी है। खजूरी पश्चिम निमाड़ (म.प्र.) का एक छोटा-सा गाँव है।

खजूरी जन्म स्थान है, जो वैकुण्ठ के समान आनन्दायक है। संवत् 1576 में थपडूँग (कंडा थापने की जगह) में जन्म लिया। 1581 में खजूरी छोड़कर हरसूद (खंडवा जिले की तहसील) आये। उनके साथ तीन सौ भैंसे थीं। घर में खूब दूध-दही था। संवत् 1598 में भामगढ़ (खंडवा जिले का पुराना जमीदारी गाँव) आकर राजा लखाराव के घर एक रूपया माहवारी वेतन में नौकरी की। सिंगाजी कहते हैं कि-मुझे अपनी जन्मभूमि निमाड़ पर बड़ा गर्व है, क्योंकि मैं यहाँ की मिट्टी में पला बढ़ा हूँ, इसका अन्न खाया है, जल पिया है और यहीं उस परम ब्रह्म की पहचान, योग्य गुरु ने करवायी है, इस तरह यहाँ मुझे सब तरह का आनंद प्राप्त हुआ है। धन्य है वह धरती जहाँ मुझे सब तरह का आनंद प्राप्त हुआ है। धन्य है वह धरती जहाँ आनंद के बाजे (नौबत), नौ तरह के बाजे) बज रहे हैं।

हमारी एक पलक की बात, मूरख जनम अकाज।। टेक।।
हाकम तो सोवे नहीं, चोर विचारी खाट।
दूध दुहायो भैंस को, भैंस बिचारी नाट।।
पानी तो बहवे नहीं, बहे विचारों खेत।

कपड़ा ने धोबी को धोया, धो-धो किया सफेद।।
गधा तो धरती चले, हाथी उड़े आकास।।
श्रवण, नयन, नासिका नहीं, नहीं रकत नाही मांस।।
आवाज तो सब कोई सुने, पंछी नहीं दिखाय।
बिना सीप मोती ऊपजे, लेवो नयन बसाय।।
एक ब्रह्म की दुनिया सारी, बिन जल रही समाय।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधौ, देखो आप में आय।।

यह संसार रूपी खेल मात्र एक पल का है। जीवन क्षण भर का है। यदि हरि का भजन नहीं किया तो यह जन्म अकारथ ही है। सिंगाजी उलटवासी के माध्यम से कुछ अनूठे प्रतीकों का सहारा लेते हुए कहते हैं कि- यहाँ हाकम (राजा) जिसका हुक्म चलता है, वह तो सोता नहीं है और चोर, जिसे जागते रहना चाहिए, वह सोता रहता है। ब्रह्म रूपी राजा तो जागता रहता है। वह आहार-निद्रा भय मैथुन से परे है और मनुष्य सोता रहता है। भैंस का दूध दूहा जा रहा है और भैंस बिचारी उपेक्षित पड़ी रहती है। बंकनाल यहाँ भैंस है और उससे टपकता हुआ अमृत ही दूध है। पानी बहता नहीं है तथा खेत बहता है। यह शरीर रूपी खेत इधर-उधर भटकता रहता है, जो इसके भीतर का जल तत्त्व है, जल के समान ब्रह्म तत्त्व है, वह स्थिर रहता है। कपड़ा धोबी को धोता है और कपड़े ने धोबी को धो-धोकर सफेद कर दिया है। यह शरीर, यह जीवन धोबी के समान है और जीवात्मा कपड़े के समान है, उसने जीवन को विकारों से रहित, सांसारिक कलुषों से गुरु ज्ञान के सहारे कर लिया है। गधा तो धरती पर चलता है और हाथी आकाश में उड़ता है। अर्थात् जो मूर्ख व्यक्ति है, अज्ञानी है, वह वासनाओं का बोझ लादे हुए धरती पर विचरता रहता है और जिसे ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है, आकाश में उड़ने लगता है वह साधना मार्ग पर बढ़ता हुआ ऊपर चढ़ने लगता

है। जहाँ ब्रह्म का निवास है, वहाँ शून्य है। उसके नाक, आँख, कान, रक्त, माँस कुछ नहीं है। वहाँ कोई आवाज सुनाई नहीं देती । वहाँ कोई पक्षी दृष्टिगत नहीं होता। वहाँ बिना सीप के मोती उत्पन्न होता है। ब्रह्म रूपी मोती बिना सीप के साधना के द्वारा ही प्राप्त होता है, उसे नेत्रों में बसा लो। दुनिया एक ब्रह्म की उत्पत्ति है और सब कहीं इसका विस्तार है। सिंगाजी कहते हैं– उस परम तत्त्व को स्वयं के भीतर ही देखा जा सकता है। स्वयं में ही पाया जा सकता है।

मगन रहो रे, आनन्द रहो रे।
प्राण निर्गुण की गोदड़ी, मगन रहो रे।। टेक।।
कायन की गोदड़ी न कायन का धागा।
केतरा महीना एखऽ, सिवणा ख लागा।।
निरगुण की गोदड़ी, न सिरगुण का धागा।
आठ नौ मास एखऽ, सिवणा ख लागा।।
दुनिया में आया, जब रोवण ख लागा।
काम क्रोध मोह माया, जकड़ी न बाँधा।।
हुयो गुरु ज्ञान, जब सत्रु सब भागा।
सिंगाजी ज्ञानपंथ, हिरदा म लागा।।

हे प्राण! निर्गुण की गोदड़ी में मगन रहो। आनन्दित होते रहो। सिंगाजी यहाँ शरीर के भीतर स्थित निर्गुण शक्ति को गोदड़ी का प्रतीक देते हुए एवं उसके बाहरी आवरण को तथा बुनावट को शरीर मानते हुए कहते हैं कि यह गोदड़ी किससे बनी हुई है और इसमें किस चीज के धागे लगे हुए हैं? कितने महीने इसे सीने में लग गये? उत्तर है– निर्गुण की इस गोदड़ी को सगुण के धागों से सीकर बनाया गया है। अर्थात् शरीर में स्थित ब्रह्मतत्त्व निर्गुण है और यह साकार शरीर उसका बाहरी आवरण है, जो कि गोदड़ी के धागों के

समान है। आठ–नौ महीने यह शरीर माँ के गर्भ में पूर्णरूप से विकसित होता हुआ जीवतत्त्व को ग्रहण कर संसार में आता है। दुनिया में आते ही यह रोने लग जाता है। काम, क्रोध, मोह, माया इसे जकड़ कर बाँध लेते हैं। जब गुरु द्वारा ज्ञान दिया जाता है। मनुष्य को आत्मज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। तब काम, क्रोध आदि शत्रु भाग जाते हैं। सिंगाजी कहते हैं कि– यह ज्ञान का पंथ हृदय में लग गया है और वे निर्गुण की गोदड़ी को ओढ़कर हम मगन हैं, आनन्दित हैं।

श्री

दृढ़ उपदेस

सिंगा लंबा दोरा एक है, मणका पोया अनेका।
तैसे लख चवरासी जीव है, खेवण हारा एक।।1।।

बीना नयन सकल कुं देख। लख चवरासी जीव संकल कुं लेख।
बाला बूढ़ा कभी न होई। बीना नयन देखे जनि कोई।।1।।

पाणी पवन सु है वो झीना। त्रषावंत कोई एक जन पीना।
अंतरगत सेवा स्वांग न लेई। ता पर साईं राजी ते होई।।2।।

ऊपर भेख अन्दर नाहीं। भूला भेख फीरे सब ठाई।
आगू पीछू दूजा मत लेखी। जैसा भादव बरसे पूरण ज्यों देखी।।3।।

लख चवरासी जीव रहे जल माही। दाद फिराद काहू की नाहीं।
उतपत परलय सबको हो जावे। एक अजर अमर तू ही कहावे।।4।।

जीव बुद्ध छांड़ी ब्रह्म बुद्ध जो आवे। तब तो साईं सरीखा हो जावे।
जे समझे तिसी का भाग। जैसी काष्ट में रहती आग।।5।।

कह्या सबद माने न कोई। मरण भला पण जीवण न होई।
घट–घट झूठ रही समाई। तामे साच रूंगावण जाई।।23।।

झूठा बोले नहीं सुकचावे। ताको जन्म सुवर को आवे।
पथर पूजे वो पत्थर पावे। निरजीव की संग जन्म गँवावे।।24।।

धीरजवान कोई धीरज धरे। ताके आसपास साईं ते फिरे।
साईं सेवक दोई कव्हावे। तब लग मुक्त कभु न आवे।।25।।

सिंगा मुख से बोले राम, नयन नासिका पहि पीवे।
कहेण सुणन कुँ अनेक नाम है, हरदे एके नहीं आवे।।6।।

ऐसी गत समझ कर जाणे। नदी दरियाव का पाणी कोण पहचाणे।
दूध माखन एक ते मेखी। साईं सेवक कोई न देखी।।26।।

सकल स्वास्थ कुटम का मेला। अंतकाल कुँ जाये अकेला।
हुकमी बंदा हुक्म कुँ जाण। पीछू देखु तो कछू लेण न देण।।27।।

मोह की कही ये भगनी और भाई। ये परदेसी जीव की कैसी सगाई।
याके जात–पात कुल ते नाहीं। गया बूँद दरियाव के माहीं।।28।।

मनुस–मनुस कहे सब कोई। देखूँ मनुस तो एक न होई।
गयबी पवन माटी मा रहीये। मनुस नाम कोण सूँ कहीये।।29।।

एक चाम का पुतल अनेक तरंगा। दिना चार नाचे कोई नहीं संगा।
जन्म दिया पण नयण न दिया। सकल पुतला आंधला किया।।30।।

सिंगा मन मृग माया वाधुर, अनेके लकड़ी लाव।
सिर के ऊपर माल आहड़ी नेहश्चे फंद में आव।।7।।

माटी का डेरा फेर माटी ते होई। गया पवन देख्या न कोई।
मेरी–मेरी करता जन्म गमाया। खाण न पाया अमर न भया।।31।।

एक कमावे सारा मिली खावे। जेका करतब तेकी संग जावे।
किया करम कभू न छूटे। जन्म–जन्म दुसमन हुई लूटे।।32।।

वैरी कर देखे न आवे कीव। मुरख नर तू केताक दिन जीव।
नाहक जन्म कछू न अवतारा। गंदी देही माखी का चारा।।33।।

अविद्या तुम सकल परहरो। एक प्रीत साईं सु करो।
जनम मरण ते न्यारा रह। लख चवरासी दुःख काहा लु सहे।।34।।

तीरथ वरत फेरा न कीजे। के लख जीव मरे दोस आपणा सर लीजे।।
भयरू भूत पूजो मत कोई। जीव मारे का लक्षण होई।।35।।

सिंगा गाल गुल सब छांड दे, हिरदे राखी नेह।
अहंकार तजी जे मुवा, ते न धरी फिर देह।।8।।

न कछु कूची न कछू ताला। सहेजू सहेज भया उजियाला।
पडल खोल जडी ते वाही। आलम दुनिया दीसे माही।।36।।

बिना सूरज होय उझाव। बिना सीप जो मोती पाव।
गरजि–गरजि बरसे मोती। झिलमिल–झिलमिल अनेक ज्योति।।37।।

नजरा देखे हाथ न आवे। ये ही मता बिरला जन पावे।
अलप लपटाण समझे कोई दास। जैसी फूल मु रहेते वास।।38।।

पाव लपटाण हातु पहेरे। ऐसा बारीक है निराधारे।
भाग पढे जीहा जाय ते चाली। साईं बिना रत्ती न खाली।।39।।

कपड़ा कुँ देद करता कुँ नाहीं। ऐसा सधन धन पुरिया सब ठाई।
सकल मु रहे सकल सु न्यारा। न वाद का सवद सुबी प्यारा।।40।।

सिंगा देखी तो हारख लागे, बोलाड्या पर मौन।
पकड़ा तो हाथ न आवे, ऐसा साधु कौन।।9।।

धूल मुऽ रहे धूल नहीं लागे। ऐसो करता है अदागे।
आग में रह आग नहीं लागे। ऐसा पावे तिसी का भागे।। 41।।

दरियाव का पाणी कैसे कर धकावे। खाली नहीं जो पहरत जावे।
हाले चाले जनम धरते नाहीं। उतपत परलय होये सब माही।।42।।

आप मारे और आप संघारे। जीव हिंसा करे संसारे।
खोजो साधो ब्रह्म हम कैसा। जैसे अग्नि काष्ठ प्रकासा।।43।।

है नजीक दूर ते नाहीं। जे जाणे ते मिले पल माही।
मन समझावो धोका नाही। चवरासी छाड़ी बसो ते माही।।44।।

मन खु धरिये तो तेज न करिये। ब्रह्म सुमरिये जम से न डरिये।
काहु का कह्या कभु न कीजे। नजर आपणी देखी लीजे।।45।।

सिंगा रचना देखु तो आवण दोसे, सब दूर देखा जोय।
है हजूर मालूम नहीं, ऐसा निराकार निज सोय।।10।।

बहकाया कोई मत बहको। जे देखो ते हिरदे राखो।
लोग की बात सुणो मत कोई। जो कहु हार–जीत मुक्त की होई।।46।।

लोक तो सकल बेठौर फिरे। कायेर घणा धरे न धीरा।
अधीरज फिरे सकल संसारा। धीरज धरे तो उतरे पारा।।47।।

रहो ईहा उहा करो निवासा। ताते छूटे साधौ पिछली आसा।
पाप पुण की जनि करो आसा। ताते आवो साधु ग्रभ निवासा।। 48।।

गर्भवास नरक है सारा। ताते तरसे साधु मन हमारा।
जाप मंत्र झूठ है सारी। याते साधु मुक्त है न्यारी।।49।।

तीरथ वरत जम की जाल। ताते झपे फिर–फिर काल।
देव–देवी की जनी करो आसा। ताते साधौ रहो निरासा।।50।।

सिंगा औगुण छाड़ी गुण करौ, सेवा करी लेवो देव।
ये ही जनम तरण तारण का, पीछू दुःख का नहीं छेव।।11।।

हिन्दू तुरक कहो मत कोई। एक बाप का बेटा दोई।
बड़ी राह जावो मत कोई। बड़ी राह लुट्या नर सोई।।51।।

अल्प गैल तुम खोजो भाई। तेम सहज आवो सहज जाई।
खिन में तारा खिन में पारा। आवत जात न देखे संसारा।।52।।

भरमा भरम करो मत कोई। अपने नयन देख लेओं दोई।
कहे–कहे इतवार न आवे। बिन देखे कैसे पतियावे।।53।।

पाणी कहे प्यास न जाई। भोजन कहे कहो कैसे अघाई।
अफिम कहे आमल नहीं आवे। ऐसे बिन पहचाने मुक्त न पावे।।54।।

आग कहे आँच नहीं लागे। कहो साधु ठंड कैसे भागे।
खाया बिना स्वाद न आवे। जैसे बिन पहचाने मन हाथ न आवे।।55।।

सिंगा तैतीस करोड़ देवता, चवरासी सिद्ध पूछो जाय।
हस्ती सरीखा खाईया। खाकस खाया न जाय।।12।।

टीका टोला लावो मत कोई। ये सब साधु पाखंड होई।
सहेज प्रीत लगावो भाई। ताते तुम अगाऊ जावो।।56।।

प्रीत सीढ़ी तुम लावो रे भाई। ताते तत्काल वहाँ पहुँचो जाई।
कही भक्ति करो मत कोई। मुवा प्राणी निवास कहा होई।।57।।

एक वाम का सकल पसारा। ऊँच नीच कहो कैसा न्यारा।
लोही मास सकल के माही। देख दुंद कहुते नाही।।58।।

मारग चले तो गाँव में जाई। कहे–कहे पहुँच न पाई।
कूकर कयसे सुभाव डारो। काहे के जनम अपणा हारो।।59।।

उपजे विनसे न साई हमारा। और दीसे सब अक्रम का मारा।
देखे और साहेब हुरदे आवे। सोई बुध संत की कव्हावे।।60।।

सिंगा ये रचना सब काँची धीर न देखु कोय।
थिर है मेरा साईया, अजर अमर निज सोय।।13।।

जाता मन कु फेरे कोई। ते नर सहज पारंगत होई।
छूट जाय तो होय संताप। ताते अड़या जनम का पाप।।61।।

तीरथ जाय और क्रोध न जाई। खेती यम ऐवी–ऐवी लाई।
तीरथ गये और झूट न जाई। अंधी दुनिया दीनी बहकाई।।62।।

तीरथ गये और तृष्णा न जाई। जान नफा छूटे ते नाही।
तीरथ गये और चोरी न जाई। अंधी दुनिया भटका खाई।।63।।

सालगराम पूजो मत कोई। अंतकाल पत्थर ते होई।
चौबीस मंत्र से मुक्त है न्यारी। अंतकाल होयगा भारी।।64।।

संध्या तर्पण टीका लावे। भीतर का कपट कहो कोण छोड़ावे।
नाम लिये कहो काहा ते होई। नाम लिये तरे न कोई।।65।।

सिंगा नौबत नगारा पर मन धरे, करम न लिखिया ढोल।
पथर से परचा नहीं। करे हीरा का मोल।।14।।

बिना देखे कहे जो साईं। पिंड छूटे जीव कहाँ समाई।
जब लग आतम गयान न पावे। तब लग जनम बिरथा जावे।।66।।

कहो दुनिया कहाँ सु ते आई। सोई ठौर कोई मोहे देवो बताई।
भेख लिये कहो कहाँ ते होई। जब लग जीवन मुक्त न पाई।।67।।

भरमी–भरमी भैख ले सब कोई। तब लग साईं राजी न होई।
भरम दिध सब जनम जाई। ते नर काहे कुँ फूले मन माही।।68।।

नदी बिना जो उतरे पारा। जनम की छूटे अरझारा।
साईं छाड़ दूसरे का ध्यान। ते नर बुढ़े पार नहीं पावे।।69।।

बटाऊ दीसे सकल संसारा। सुपेत होय तो उतरे पारा।
जिवते जाणते उतरे पारा। स्वांगी विचारा करे अरझारा।।70।।

सिंगा ऐसे साईं में लोग हैं, साईं अमर दुनिया थिर नहीं।
कई जुग परलय हो गया, साईं उपजे बिणसे नाहीं।।15।।

नर नारी कर एक बाप। काहे को हिरदे लावो पाप।
पाप पुन्न बंधन है दोई। अन्त काल तेरा ते तू ही।।71।।

काहाँ का बाप काहाँ की माई। कहो केताक दिन की सगाई।
ये सकल स्वास्थ का मेला। अन्तकाल तू जाय अकेला।।72।।

मयेला देखे सकल संसारा। सुपेत होय तो उतरे पारा।
कपट दगा हमेसा करे। ते नर कहो कैसे निस्तरे।।73।।

घर मा चोर घर मा मूसा। कहो कोण को दीजे दोसा।।
मुक्त राह तुम खोजो भाई। काहु का आपण न आपण होई।।74।।

मन कुँ पाप देह कुँ नारी। काहा जाये धोबे जन माही।
देह कुँ पाप होय तो जल धोये। मन का किया मन फल ले आवे।। 75।।

सिंगा तरण तारण देही सही, दुःख का छेव नाही।
नर देही मा पहने कोई, तो चवरासी छूटे पल में साईं।।76।।

तीरथ–तीरथ कहे सब कोई तीरथ सारापाणी ते होई।
अस्नान कीये पाप न जाई। अंधी दुनिया फेरा ते खाई।।77।।

देव–देव कहे सब कोई। देव सब पथर ते होई।
देव पूजे भला न होई। विनती करी–करी मुवा सब कोई।।78।।

मनुस–मनुस कहे सब कोई। मनुस सारी माटी ते होई।
इनका भरोसा करो मन कोई। अन्तकाल जीवणा न कोई।।79।।

माया–माया कहे सब कोई। माया मूल पथर ते होई।
देखत कानी खाय न जाई। ता पर मन लटुरो थाई।।80।।

सिंगा माया मेरे नाथ की, कछू अपणी मत जाण।
खात देत खुटे नहीं। सब जग भया हैराण।।16।।

अन्नदेव–अन्नदेव कहे सब कोई। अन्नदेव सारा चारा ते होई।
जिमी स्वार जोजक छारा। रात दिवस दुनिया होय बेजारा।।81।।

मनुस–मनुस कहे सब कोई। मनुस देखु सब माटी ते होई।
ऊपर रंग तुम देखो जाई। गया पवन मालूम न होई।।82।।

निद्रा–निद्रा कहे सब कोई। निद्रा नहीं सब संतोस ते होई।
मन सोहे सोहंग ब्रह्म जागे। करे कलपणा दाहा दीसा भागे।। 83।।

रात–रात कहे सब कोई। रात आसमान की छाया ते होई।
घड़ी एक विश्राम पीछू वोई हवाल। देखो जनम धर्या का ख्याल।। 84।।

बादल–बादल कहे सब कोई। बादल नहीं सब पाणी ते होई।
ये सकल पवन की खाप। गयबी गाजे आपै आप।।85।।

सिंगा आप जाणे होयगा, और जाणे जोजक जाये।
जे नर ने खांड खाई, ते मली केउ कर खाये।।17।।

हिन्दू तुरक कहे सब कोई। मूल दोई का एक ते होई।
एक ही लोही एक ही मासा। एक जीव और एक सासा।।86।।

कपड़ा–कपड़ा कहे सब कोई। कपड़ा सारा कपास ते होई।
घड़ी एक सोभा पीछू चिंधी। लटुरी दुनिया होय ते अंधी।।87।।

देवी पूजे कहो कहा ते होई। देवी पूजे तरे न कोई।
पीसे पोवे आप ते खावे। सिंदूर लई–लई भाल कुँ लगावे।।88।।

बेटा–बेटी सुफल कर माँगे। कोण बचावे जब लागी ते आगे।
तीरथ गये कहो कहाते होई। तीरथ गये तरे न कोई।।89।।

तीरथ गये और गाटा को खावे। बुड़की दई–दई जल मुं न्हावे।
चिंता व्यापे तब घर मो आवे। ऊपर धोवे पाप नहीं जावे।।90।।

सिंगा जाप जपते मान वे, दृष्ट देखे सो देव।
उनसे जम से भेटे नहीं, छूटे पूरब जनम का छेव।।18।।

पुन किया कहो कहाते होई। पुन किया तरे न कोई।
जिसका माल तिसी को दिया। अंधा ने बोझ अपणा सर लिया।।91।।

इसका किया कभु न होई। गुलाम पराया मनवा ते होई।
करता पुरस देवे तब खावे। टुकत फिरे चहु दीसा चाहे।।92।।

पुन करी–करी लोक बिलमाया। अंतकाल मुक्त नहीं पाया।
जाप जपे कहो कहा ते होई। जाप जपे तरिया न कोई।।93।।

हाथ पाव धोई सुमरण करे। मन कपूत धीरज न धरे।
सुमरण सारे निरफल जाई। देखया बिना केऊ मीलते साँई।।94।।

भेख लिये कहो कहा ते होई। मेख लिये तरे न कोई।
ऊपर भेख अंदर नाही। अंधा गया सब जोजक माही।।95।।

सिंगा दीना चार का धुसरा, काहा टीका कहा भीत।
मुख धोये क्या होयगा, जैसे न होवे परतीत।। 19।।

नाम लिये कहो कहा ते होई। नाम लिये तरे न कोई।
नाम–नाम कहे सब कोई। नाम बारे राम से न्यारा होई।।96।।

पुकार–पुकार मुल्ला अजान। अंतकाल न पोहचे ठीकाण।
नाम होय तो बोले सही। अंधी दुनिया भरम गई।।97।।

भरम–भरम सकल सब डोले। मुख नहीं कैसे कर बोले।
राम कहे होय कछू नाहीं। देखो संतो हिरदा माहीं।।98।।

तपस्या किये कहा ते होई। तपस्या किये तरे न कोई।
भगवा किया जटा बढ़ाई। मन की कलपणा कभी न जाई।।99।।

ऊपर भेंख अंदर नाहीं। कभी नजर देख्या नहीं साईं।
गायत्री मंत्र जपे कहा ते होई। गायत्री मंत्र जपे तरे न कोई।।100।।

सिंगा ऊँच जात विप्र कव्हावे, नीच जात घर मांगण जाय।
तरण तारण कुँ गउ कव्हावे। तो केऊ विष्टा खाये।। (20)

कपाल टीका खदे दोरा। अंतकाल साईं का चौरा।
जज्ञ कीये कहो कहा ते होई। जज्ञ किया तरे न कोई।।101।।

जज्ञ किया जगन्नाथ न जाना। साईं का मन कभु न माना।
सोभा करी लोक जिमाया। अंतकाल अपजस ते आया।।102।।

कोई गया जिमी कोई गया रीता, देखो साधु जग का फजीता।
गिन्यात जिमाये कहो कहा ते होई, गिन्यात जिमाये तरे न कोई।। 103।।

गिन्यात जिमावे बकरा लावे। सोही दोस आपणा सिर आवे।
सारी खट पट सुख कहु नाही। जब लग दया न उपजे मन माही।।104।।

रात दिवस बहुतक धंदा। सूजे नहीं भये–सा अंधा।
खाण न पाया स्वाद न लिया। अंतकाल जनम कूकर का दिया।।105।।

सिंगा कोई खाय मास और दारू, कोई खाय भात और रोटी।
अंतकाल मुक्त न पावे, ये कमाई सब खोटी।।21।।

माया हुए कहो कहा ते होई। माया होवे तरे न कोई।।
मेरी–मेरी करता जनम गमाया। करता पुरस हिरदे नहीं आया।।106।।

वेद पढ़े कहो कहा ते होई। वेद पढ़े तरे न कोई।
तले कागज ऊपर स्याही। अंधा रे पंडत देखे न माही।।107।।

आप कहे सुणावे लोग। कयसे बुझे हुरदा की आग।
लालुच झूठ कभी न जाई। ये सकल झूठ ते होई।।108।।

ये सकल झूठ ते होई। ये राह जावो मत कोई।
सकल छांड एक कुँ ध्यावो। तो अपणी मुक्त आप मा पावों।।109।।

देखी सेवा करे सब कोई। आण देखी सेवा झूट ते होई।
साईं सेवों करो अरदास। और सकल झूठी आस।।110।।

सिंगा नर साईं खु सेव रे, रहे–रहे समाये।
लोहा सु लोहा घसे, तो मैल दोनों का जाय।।22।।

कहा बखाणू रूप निसाणी। जेऊ दरियाव में झलके पाणी।
सुणो कोई अनुभव की वाणी। तेज अहंकार जायगा पाणी।।111।।

खाली नहीं सब दूर पुरा। आसमान बाजे अनहद तूरा।
बीज चमके नयण मंझारा। बिन बादल बरसे दो धारा।।112।।

खोजो साधु आपके माही। जेउ दरपण भी दीसे झाई।
दूर नहीं आस ते पासा। जैसी फूल में रहती बासा।।113।।

हाय हाय करता सब दिन बीता। अंतकाल कुँ जायगा रीता।
हारक सोक करो मत कोई। करता करे सो निश्चय होई।।114।।

बहकाया फिर सकल संसारा। जे पहचाण ते उतरे पारा।
अपणा स्वास्थ फिर सब कोई। साईं राजी नहीं भला क्यों होई।।115।।

सिंगा सुरीज एक है, जिहा–तिहा निज धाम।
ऐसा साईं एक है, जिहा–तिहा निज राम।।23।।

नारी पुरस कहे सब कोई। बोलन हारा एक ते होई।
एक मास और एकै थूला। मरद देखी मरद भूला।।116।।

प्राण भीतर तन है सारा। प्राण अमर तन सब छारा।
बीज भीत बड़ा है सारा। बीज अमर बड़ सब छारा।।117।।

बीज भीतर पीपल है सारा। बीज अमर पीपल सब छारा।
गोठली भीतर आम है सारा। गोठली अमर आम सब छारा।।118।।

बीज भीतर तुंबा है सारा। बीज अमर तुंबा सब छारा।
काकड़ा भीतर कपास है सारा। काकड़ा अमर कपास सब छारा।।119।।

बाहर भरमो मरो मत कोई। पहचाणों साधौ आपमा होई।
देखो कोई ग्यान हमारा। जिस मा डुब्या सकल संसारा।।120।।

सिंगा एक पुरस की रचना, सारी, किया नान्ह विस्तार।
ग्यान दृष्टि देख्यिा, दूजा न सिरजणहार।।24।।

आप रूप देखों कोई देस हमारा। उस जगा कछु सुरज नहीं तारा।
चार वेद नहीं चाई खाणी। उस देस कंछू पवन नहीं पाणी।।121।।

भूख प्यास लोभ नहीं आस। जिहा खेले कोई बिरला दास।
रात दिवस धूप नहीं छाया। आव न जाय मोह न माया।।122।।

अंधा जपे मन समझाव। गाँव न खेत नाव न ठाव।
भीतर नहीं नहि ते न्यारा। जिसका जग में सकल संसारा।।123।।

दूर नहीं जाण नजीक रहेणा। भरमी–भरमी वे हाल न होणा।
तीरथ वरत मिथ्या करी जाण। एक साईं सु करो पहचाण।।124।।

देव–देवी की जनि करो आसा। साईं–बिना मिटे न प्यासा।
ऐसा जाणी सेवा अविनासी। तो मीटे गरभ वास की पॉसी।।125।।

सिंगा आसमान ऊपर बैठे हैं, करे आसमान की बात।
सुगरा को दिवस है, निगुरा को जैसी रात।।25।।

आकास ऊपर जावो मत कोई, करता पुरस तुम मा होई।।
अकेला साईं कबलग घड़े। घड़ते–घड़ते मांदा पड़े।।126।।

वाके कछू मजूर नहीं लागे। सहज सहेज पायली ते आगे।
नहीं दीवान नहीं दरबारा। पुरस से निश्चय करो अरझारा।।127।।

पूछता जरा ते नहीं कोई। जैसी मती तैसी गति होई।
कहे–कहे का हालु माने। अंदर उपजे ताखु जाने।।128।।

देह धरी करता मत जाणी। पिंड पड़े जीव जिहा रहे ते जगा पहुचाणी।।
यही बात खोजो नर लोई। और भरमणा भरमो जणी कोई।।129।।

पाणी बिन मछली क्यों जिये। ऐसा सर्वजीव ब्रह्म रस पीये।
अनहद बाजे अखंड गाजे। बीज चमके आसमान विराजे।।130।।

सिंगा सगुरा को दिवस है, निगुरा को जैसी रात।
बस्ती बहु न देख्यिा, जिहा तिहा उ जड़ात।।26।।

नरम बिना नेरा न पावे। नरम बिना आसमान न जावै।
नरम नजर करता देखावे। नरम बिना अनहद कैसे बजावै।।131।।

नरम बिना नेरा न पावे। नरम बिना मत हाथ न आवे।
नरम बिना सर संधान न होई। नरम कमाण दागे सब कोई।।132।।

नरम रेसम महँगा बिकावे। सब कपड़ा में सोभा पावे।
नरम घीव स्वाद पर आवे। जैसा नरम नरम महँगा बेकावे।।133।।

नरम कपड़ा सब सु प्यारा। जैसा नरम साईं हमारा।
नरम चन्द्र कुँ नवे सब कोई। नरम बिना मुक्ति न होई।।134।।

सब खोओ एक कुँ राखो। गावण बजावण चतराई नाखो।
पहचाण प्रीत अंतरगत लावों। व्रत छोड़ी नयन देखी ध्यावो।।135।।

सिंगा नरम निश्चय बिरला देखु, कपटी है संसार।
सिंगा अपणा क्या जायगा, जंघा करेगा अरझार।।27।।

सोना रूपा होय ते घणा। तुम बिना प्रकार जीवणा।
हाथी घोड़ा है ते घणा। तुम बिना प्रकार जीवणा।।136।।

नौबत नगारा धुरे अपारा। तुम बिना जीवणा प्रकारा।
तीरथ वरत करते घणा। तुम बिना प्रकार जीवणा।।137।।

देवा–देवी पूजे ते घणा। तुम बिना प्रकार जीवणा।
दान पुंन करे अपारा। तुम बिना जीवणा प्रकारा।।138।।

राजपाट पाछाई होई। तुम बिना प्रकार है सोई।
कटक खंगार होय अपारा। पुत्र कलत्र है घणा अपारा।।139।।

जैसा माया का सुख भोगे अपारा। हरी भक्ति बिना ध्रंग–ध्रंग संसारा।
हरी नाम जपो मंड अजाण। हरी भक्ति बिना दुख निवारे कोण।।140।।

सिंगा मीष्ठान मेवा मीठा लागे, पाछू वीष्टा न खाया।
दिना चार हरियाली दीसै, अंतकाल सूखी जाय।।28।।

झूठ खोवो साच लेवो ते सही। आप ठगावो और ठगिये ते नाही।
क्रोध खौवो सील संतोस करो। सोक खोवो हरख मन धरो।। 141।।

कुँ जबा खोवो सु जबा बोलो। अवगुण खोवो गुण कुँ खोलो।
थोड़ा खावो बहुत न खाजो। निद्र खोवो जागरण लीजो।।142।।

सोभा खोवो गरीबी सु रहो। पाप खोओ धरम को गहो।
कुँ द्रष्ट खोवो सु द्रष्ट से देखी। घणा खोवो थोड़ा सत करी लेखी।।143।।

भूला खु भूला बहैकावे। आप अंधा और कहा बतावे।
राह छोड़ चले आडवाटा। कहा करे पहले जड़े कपाटा।।144।।

देखे और विसवास न आवे। तीन को साईं दूर छोड़ावे।
पुखता होय तो मन भासे। ऐसे गवार केते गये प्यासे।।145।।

सिंगा देखी बात कहे न कोई, कहीं बात खु हाँ जी।
कोई एक नर दूध पिया, केउ पीयगा कांजी।।29।।

सकल ब्राह्मण देख्या जोई। धागा नाखे उत्तम न होंई।
पांडु घसे और टीका लावे। जैसी गीद करगट पर ध्यावे।।146।।

संध्या सारे हार–हार करे। मन की तृष्ण कभु न मरे।
उत्तीम जात विप्र कव्हावे। सूतक मृतिक घर में लावे।।147।।

मसाण जाय गउ ते लेई। उनसे नीच और न कोई।
आवला सवला करे बहु तेरा। विकार भरा सब तन केरा।।148।।

धूरा कमावे फिरे घर–घर। डेढ़ चमार का दर्शन कर।
कामल बेचे हाट मा जाई। झूठा बोले और खुसी छाई।।149।।

ऐसा सकल ब्राह्मण देख्या जोई। इनसे नीच और न कोई।
चाल है नीच–नीच नहीं जात। सुरता जण तुम सुणों हो बात।।150।।

सिंगा जैसा जीव आपणा, तैसा सकल मु देख।
कसब देखी भूलो मत, बोलणहारा एक।।30।।

राम कहे झूठ जो बोले। ताते फिरी–फिरी चवरासी डोले।
राम कहे और दारू पीवे। राम कहे और मारे जीवे।।151।।

अतः करण होय सो साची। मुरबाद भक्त सकल है काची।
राम कहे करते है चोरी। राम कहे ताके पर नारी।।152।।

राम कहे मास जे खावे। ताते फिरी–फिरी जोजक में आवे।
राम कहे हुरदे बसे क्रोध और काल। तिन पर पड़े जम की जाल।।153।।

मुख राम हिरदे नहीं दया। तिनका जनम सुवर का भया।
राम कहे और चुगली करे। ताकूँ साईं दूर परहे हरे।।154।।

राम कहे दगाबाजी न जाई। ताका जनम लग कुकर थाई।
कहै सिंगा सुणी नर लोई। मुख से कहे कछू न होई।।155।।

राम नाम बीज मंत्र है, रटत प्रीति लगाय।
मंगल पर धीरज धरे, कोट विघ्न टल जाय।।31।।

भूली हारी बात न जाणी। बकरी कुँ माय कर मानी।
भूली भैस ते पाडा जाया। लेकर मन मनुस ले आया।।156।।

भूला लोक आपण खोजे। पत्थर कुँ देव कर पूजे।
भूली मुरगी न जाणे भेव। मोहण का अंडा आपण करी सेव।।157।।

भूली गोचड़ी थान कुँ धावे। लोही पीवे दूध न पावे।
भूला मृग आपण खीजे। दवड़त फिरे जड़ात सूँघे।।158।।

भूली मछली पाणी मा घर करे। नीर न पीवे प्यासी मरे।
ऐसे भूला लोक ब्रह्म मा फिरे। बिन पहचाण कैसे तिरे।।159।।

साईं–साईं करी खलक जगावे। भीतर बुद्ध एक नहीं आवे।
सतगुरु मिले तो साईं को पावे। तेथी मन दया पर आवे।।160।।

सिंगा जल मा डूबी गागरी, जल गागर के माहि।
आलम डूबा ब्रह्म में, अंधे को सूझत नाहि।।32।।

एक मारे सकल सिध होई। भेद जाणी विरला जण कोई।।
सकल ध्यावे सो जोजक म जावे। एक कुँ ध्यावे तो पारंगत होवे।।161।।

एक आलम से हुआ अनेक। कहो कैसे करी होवे एक।
कंचन एक आभूषण अपारा। आभूषण गाला कंचण सारा।।162।।

तैसे ब्रह्म में जे जन गल गया। ते नर ब्रह्म सरीखा भया।
जब लग बँध्या भरम के माही। तब लग ब्रह्म होयते नाही।।163।।

जब क्रम भ्रमती रहित जो होई। तो आप सरीखा सहज सोई।
ऐसा कहे सिंगा समझाई। तुम सुणो मेरे संत जन भाई।।164।।

जो ये कथा वाचे सूणे करे अभयास। तो भक्त दृढ़ होवे विश्वास।
अब ये कथा सम्पूर्ण भई। सुणो साधौ सिंगाजी ने कही।।165।।

सिंगा जग में जीवता, सेवक सुमरे पास।
जा कारण तन धरिया, सौ ब्रह्म जोत प्रकास।।33।।

(संत सिंगाजी की 'वाणी' से उद्धृत, साभार,
प्रकाशित – सन् 1958, नरसिंहपुर प्रेस)

श्री
आत्मध्यान

सकल जीव एक कर लेखे, उँच–नीच कोई मत लेखे।
भूख प्यास आत्मा जाने, हर्ष सोक हृदय नहीं आने।।

देव–देवी की नहीं करे पूजा। आठों पहर भाव नही दूजा।
नर–नारी से झूठ न बोले। सत्त न छोड़े घर–घर नही डोले।।

साँप–बिच्छू कछू न मारे। तरण होय जो चले ऐसी चाले।
अल्प अहार बहुत सा न खावे। तीसरे चौथे दिवस नदी तरफ जावे।।

जैसी अपनी तैसी पराई जाण। होय मुक्त–मुक्त में हाण।
सोभा मान अहंकार डारे। तो तरही गयो फिर साईं क्या तारे।।
लालच लोभ सकल है कांची। हुश्यारी करो नहीं तो होयगी हासी।।

ऊँच–नीच में पूर रहा, नहिं सेव नहिं पूजा।
मोक्ष का मूल सत्, ये भी धर्म न दूजा।।

सोहंम ध्यावे उनमुनि लावे। अनहद में हाथ न लावै।
चन्द्र–सूर्य दोई बतावै। निरख–परख भेद जो पावै।।

बंकलाल में आवे जावे। किल्ली देके उल्टा चढ़ावै।
जहाँ टीका तहाँ साहब बैठो। हाथ न पाव रूप न रेखों।।

उलट अपान प्राण में लावै। पश्चिम दिशा में खिड़की खुलावे।
इक्कीस ब्रह्मांड हैं इक्कीस मनका। वहाँ है गहरी भँवर गुफा।।

अरद उरद मूल त्रिवेणी ऊपर। सत्य निरंजन दो दल कमल ऊपर।
दस दरवाजा प्रगट बतावै। तीन दरवाजा गुप्त न पावै।।

अठारह भार वनस्पति रोमावली। छिन में सफेद छिन में काली।
सकल हाड़ पर्वत सवा लाख। सत् सबद ये सिंगाजी भाख।।

जैसी रचना बाहर है, तैसी भीतर देख।
बाहर–भीतर एक है, कहन को है अनेक।।

तैसी देह जिमी है।
यामें परवत चाहिए। तो टोंगल्या वो हड्डी परवत है।
यामें झिरना चाहिए। नौ द्वार सब झिर हैं।
यामें पाठा चाहिए। पांसू सब पाठा हैं।
यामें चन्द्र–सूरज चाहिए। दोनों नैन चन्द्र–सूरज हैं।

यामें नदी चाहिए। तीन गुण तीन नदी हैं।
यामें बादल चाहिए। तो भय भ्रम बादल हैं।
यामें बिजली चाहिए। तो उनमुनी का चमकारा बिजली है।
यामें इक्कीस ब्रह्मांड चाहिए।

पश्चिम दिसा के इक्कीस मण का इक्कीस ब्रह्मांड हैं।

यामें आकाश चाहिए। तो आकाश सीस है।
यामें गर्जना चाहिए। अनहद गर्जना है।
यामें काल चाहिए। तो क्रोध काल है।
यामे षटचक्र चाहिए। तो षटकमल घटचक्र हैं।
यामें परमेश्वर चाहिए। तो सोह्म परमेश्वर हैं।

बाहर भीतर जल भई, अन्तर नहीं लगार।
अपने नयन आपको देखें, न कछु वार न पार।।

बाहर वाणी का रंग लाल। बाहर जिमी का रंग पीला।।

बाहर पत्थर है। बाहर वनस्पति है।
बाहर नदी है। बाहर पर्वत है।
बाहर जिमि है। बाहर पानी के झिर हैं।
बाहर पाठा है। बाहर बिजली है।
बाहर पवन है। बाहर गरजना है।
बाहर तारा है। बाहर मोती है।
बाहर नर है। बाहर नारी है।
बाहर काल है। बाहर कर्ता पुरुष है।

मूल द्वारे गनेस देवता। रंग पीला। पाखड़ी चार।
जाप – 600

स्वाधिष्ठान चक्र ब्रह्मा देवता। रंग स्वेत। पाखड़ी छः।
जाप – 6000

नाभि कमल विष्णु देवता। रंग नीला। पाखड़ी आठ।
जाप – 6000

हृदय कमल सिव देवता। रंग लाल। भीतर रंग काला। पाखड़ी बारह।

जाप – 6000

कंठ स्थाने जीवात्मा देवता। रंग हरा। भीतर रंग स्वेत। पाखड़ी सोलह।

जाप – 1000

त्रिकुटी स्थान दोई दलकमल पर आकास जहाँ सत्य निरंजन सोहम पुरुष परमात्मा देव। जिसके रूप न रेखा।

जाप – 1000

सहस्त्र दल कमल पर सतगुरु आदि पुरुष।

जाप – 1000

कुल जाप – 21600 (इक्कीस हजार छह सौ)

(संत – सिंगाजी की वाणी से उद्धत, साभार)

श्री
दोषबोध

दोष मद मांस खाये का। दोष चोरी अन्याय किये का।
दोष तो झूठ बोले का। दोष चुगली किये का।।1।।

दोष पराई निंदा का। दोष कड़ी जुँवा बोले का।
दोष जीव हतन किये का। दोष कुदृष्टि देखे का।। 2।।

दोष दगा किये का। दोष बकवाद किये का।
दोष कुँ जवां बोले का। दोष आत्मा किलपाये का।। 3।।

दोष तो खोटा दिये का। दोष जाफा लिये का।
दोष पर उपकार न किये का। दोष मेरी–मेरी किये का।। 4।।

दोष अहंकार किये का। दोष हथियार बाँधे का।
दोष साख बोले का। दोष जगत कमाये का।। 5।।

दोष चेटक नाटक किये का। दोष नाम लिये का।
दोष बैल बाधी किये का। दोष सन्त को सताये का।। 6।।

दोष ब्रह्मा अंस खाये का। दोष सिव निरमाल खाये का।
दोष अनदेखा दोष लगाये का। दोष जुवां खेले का।। 7।।

दोष व्यभिचार किये का। दोष ब्रह्म को छोड़ि देव सेवने का। 8।।

आये साधू जगत में। नाम लिये उतरे पार।
और डूबा भवसागर में। सिंगाजी कहे विचार।। 9।।

सतगुरु ऐसा चाहिए। जग में होत उछाव।
दुनियाँ डूबी ब्रह्म में। दीसै नारायण को भाव।। 10।।

(संत सिंगाजी की वाणी से उद्धृत – साभारत)

श्री
नरद

तप किया न खाक लगाई। सतगुरु दिया सहज बतलाई।
अन्न खाय न पानी पीवे। हाथरू पाँव सीस नहीं दीसे।।1।।

ना बोले ना रूप दिखावे। ऐसा तू जगदीस कहावे।
जो कछु हो पहली ही कमाई। सतगुरु खोजो सहजहिं जाई।। 2।।

सतगुरु दिया सहज बतलाई। ता पर ध्यान धरो लौ लाई।
तीन लोक में किया पसारा। क्यों कर भूला सब संसारा।। 3।।

सोल्हा सहस्र जिन परनी नारी। सो तो कहाना मत ब्रह्मचारी।
अहो पंडित तुम देखो बिचारी। कौन भया पुरुष कौन भई नारी।। 4।।

आपै गावे आप सुनावे। भजन कपूत मुक्ति नहिं पावै।
अपनी मुक्ति को आप न जाने। तो क्यों बाँचे वेद पुराने।। 5।।

पंडित अनेक जन्म का धारी। कहो तो नगरी कहाँ की तारी।
माटी गूँजी कर दुजवारी। ऐसी गति से दुनी उबारी।। 6।।

तामें कैसे करों विचारा। साईं सेती कोई नहिं न्यारा।
तन मन सौंप साईं लौ लाओं। जम के हाथ से जीव छुड़ाओं।। 7।।

जीव औ जम का एक ही बासा। अन्धी दुनियाँ होवे ग्रासा।
बार तिथि जो आय के पूछे। रात दिवस सब एक ही दीसे।। 8।।

खौज खरा कछु नह दासै। ऐसा परिया इक जगदीसै।
ख्याल देख साधु जन हसै। ज्यों परदे में पुतली नचै।। 9।।

बिन देखे क्यों चलिये बाटा। जाय पड़े कहीं औघट घाटा।
जनसिंगा भूलों संसारा। जीते जी कोई उतरे पारा।। 10।।

(संत सिंगाजी की वाणी से उद्धृत–साभार)

श्री सरद

सरद कहो तुम संशय मेटा। हर्ष सोक नहिं करना।
घड़ी एक दिन दो चार में। अखिर अंत को मरना।। 1।।

सुन्न में रहना भेद न कहना। पाप पुन्य नहिं जाना।
ले दीपक दरयाव में बैठा। मनुआं जाय हिराना।। 2।।

त्रिकुटी में भाटी लागी। बहती नदियाँ दोई।
जो जन जाने सो पहिचाने। पिये सन्त जन कोई।। 3।।

कहाँ से आया कहाँ जायगा। कहाँ जीव का बासा।
सोई पंथ तुम खोजो साधू। और झूठी सब आसा।। 4।।

करम भरम बँधा संसारा। ये तो बन्धन सारा।
करम न मेटे बन्धन न छूटे। सोई पंथ है हमारा।। 5।।

सुन्न करो तुम शहर बसाओ। मारो पाँचों थाना।
आकाश ऊपर महल है जिनका। बिन पेड़ी का जाना।। 6।।

आपन सेती प्रीत लगाओ। ज्यों नदी का पानी।
अधबिच में तोड़ा परै। तो होथ भक्ति में हानी।। 7।।

जित देखो तित मृतक सारा। किस से जोड़ों यारी।
समर्थ साहिब से पर हैं। साधु सोई है मुक्ति प्यारी।। 8।।

मुआ–मुआ कहै संसारा। मुआ न दीसै कोई।
तन काँचरी उतार धरी है। फिर–फिर जीवता होई।। 9।।

प्रेम जेवरी मनुआँ बन्ध गओ। कुमत संग ना जाई।
बगला छोड़ बनो रे हन्सा। मोती चुग–चुग खाई।। 10।।

इंगला पिंगला सुखमन नारी। सोई है जात हमारी।।
कहो जन्म तुम क्या करोगे। मोटी वस्तु सारी।। 11।।

जैसे बेटी रहे सासरे। पीहर तन को जोवे।
ऐसे सन्त रहे दुनियाँ में। सुरत निरत में होवे।।12।।

रोम–रोम तन दीपक। लगा नहीं मूल से देही।
हाथ पाँव कछु नाहीं दीसै। निरख सुख लेई।। 13।।

रूप न देख कछू न दीखै। ऐसा नाथ हमारा।
जिनके सिर पर नौबद बाजे। रहे खलक से न्यारा।। 14।।

काहे की जम्मीन बनाई। काहे का असमाना।।
यही बात का विवेक आनो। सुन्न में सुन्न समाना।।15।।

काहे का बादल बनाया, काहे का है पानी।
काहे की वो बिजली चमके। पूछो हरि के ज्ञानी।।16।।

काहे का वो चन्द्र बनाया। काहे के हैं तारा।
काहे का वो सूर्य बनाया। पूछो हरि का प्यारा।।17।।

भैरों ख़ाली भूत भी खाली। खाली देवा देवी।
बिन पानी से पैदा करता। सच्चा साहब सोई।। 18।।

तीरथ खाली बरत भी खाली। खाली देवा चारा।
द्वैत भाव से बाहर देखे। तभी मिले करतारा।। 19।।

नहिं कछु छोटा, नहि कछु मोटा। नहिं कछु हल्का भरी।
मूल रचना साहब रच दीन्हीं। कहाँ ये पुरुषा नारी।। 20।।

अकाश पताल मेघ मेदनी। पवन पानी किन दीया।
गूलर में से पन्छी उड़या। संयोग किन्हों न कीया।। 21।।

कोई कहे बेटा कोई कहे बेटी। कोई कहे पुरुषा नारी।
संजोग कहो तो सब ही झूठे। गैली दुनियाँ सारी।। 22।।

मुख सेती राम कहो। मन तो फिरे उजाड़ा।
खेत कहे मोहे नेक न खेड़ो। कैसे पाके बाड़ा।। 23।।

ऐसे राम कहै का होई। यह तो मुक्ति नहिं पाई।
ऐसे राम कहै गये केतक। गिनत पार ना आई।। 24।।

जोगी होके जटा बढ़ावे। नगर फिरै जस भैंसा।
चमड़ी ऊपर खाक रमाई। मन जैसा का तैसा।। 25।।

भैख लिया पर भेद न जाना। बैल फिरै ज्यों घाना।
परदे अन्दर साहब ठाड़ो। उसको नहीं पहिचाना।। 26।।

माया मोह देखकर भूला। ये परपंच की चट्टी।
इस देही का क्या भरोसा। आखिर हो गई मट्टी।। 27।।

रैन दिवस क्यों करै कलपना। माया ते मनलाया।
नौ महिने तक रहा गरभ में। वहाँ किन ने पहुँचाया।। 28।।

सहज गुड़ी पवन गुतानी। कई एक भाषा बोले।
सहस्र पाखंडी मन खों लागी। क्यों कर सीधा होवे।। 29।।

एक वृक्ष के फल है सारे। कोई खट्टा कोई मीठा।
डाल पत्र कछू नहि दीसै। और जाय सब दीठा।। 30।।

ये मनुआं जब सीधा चाले। नहि क्रोध नहिं काया।
तुरत काल के काम को मेटे। पलटे दूजी काया।। 31।।

नहीं यहाँ से बाहर रहूँगा। नहीं जाउँगा पारा।
मुक्त मूल वैराग्य सिंघाजी। हिन्दू तुर्क से न्यारा।। 32।।

श्री

देश की वाणी

मेरे देश क्रिया नहीं कारी। मेरे देस पुरुषा नहीं नारी।। 1।।

मेरे देस शक्ति नहिं सीवै। मेरे देस मरे न जीवै।। 2।।

मेरे देस सांसा नहिं बेटी। मेरे देस सांच नहिं झूठी।। 3।।

मेरे देस बेटा नहिं बेटी। मेरे देस सांच नहिं झूठी।। 4।।

मेरे देस पूजा नहिं पानी। मेरे देस जापा नहिं थापी।। 5।।

मेरे देस जमी नहिं असमाना। मेरे देस बालक नहिं ज्वाना।। 6।।

मेरे देस नैन नहिं अन्धा। मेरे देस सूर्य नाह चन्दा।। 7।।

मेरे देस कूकर नहिं कागा। मेरे देस बकरी नहिं बागा।। 8।।

मेरे देस बादसाह नहिं काजी। मेरे देस उमराव नहिं पाजी।। 9।।

मेरे देस पाप नहिं पुण्य। मेरे देस बोले नहिं मौन।। 10।।

कहें सिंघाजी कहते–कहते हैरान हुआ, अब कछु कहा न जाय।
कूकर स्वभाव छोड़े नहीं, फिर–फिर हाड़ चवाय।।

मेरे देस नभ नहिं तारा। मेरे देस धरती नहिं भारा।। 11।।

मेरे देस राम नहिं सीता। मेरे देस भागवत नहिं गीता।। 12।।

मेरे देस नागा नहिं सन्यासी। मेरे देस वैरागी नहिं उदासी।। 13।।

मेरे देस ऊँच नहिं नीच। मेरे देस जरा नहिं मीच।। 14।।

मेरे देस भट्ठ नहिं पंडित। मेरे देस तीरथ नहिं बरत।। 15।।

सिंघाजी ऐसा कोई एक देस है, जाप मंत्र है नाहिं।
बहुरि–बहुरि आवे नहीं, जहाँ का तहाँ समाय।। 16।।

सिंघाजी साईं सरीखा दरयाव है, खाली नहीं लगार।
जिमी असमान सब डूबियाँ, और सकल संसार।। 17।।

(संत सिंगाजी की वाणी से उद्धृत – साभार)

बाणावली

मरजाद जीव की। मरयादा तन की। सिंगार तो शोभा को।।1।।

निद्रा तो सुख की। जागना तो चिंता को। आवना तो जीव को।।2।।

प्रलय तो तन का। बल तो हिम्मत का। बाणावली सांवत की।।3।।

भागना तो कायर का। झूठ तो लोभ की। साँच तो मुक्ति की।।4।।

तपस्या तो पत्थर की। धीरज तो वृक्ष की। सुफेरा तो सूरज का।।5।।

सत्य तो धीरज का। चंचलता तो पवन की। कला तो बुद्धि की।।6।।

प्यार तो मोह का। आवरण तो त्याग का। तान तो कोयल की।।7।।

मित्रता तो प्रीति की। रूप तो पानी का। तेज तो अग्नि का।।8।।

बोझा तो जमीन का। हलकाई तो आकाश की। तरना तो वैराग्य का।। 9।।

डूबना तो अज्ञान का। आहार तो मन का। सठपना तो अपमान का।। 10।।

इज्जत तो भलाई की। लज्जा तो सरम की। स्त्री तो कामदेव की।।11।।

भूख तो प्राणवायु की। धर्म तो दया का। लोभ तो पाप का।।12।।

आसा तो जीवन की। स्वासा तो तरने की। गरज तो सेवक की।।13।।

हर्ष तो फायदे का। सोच तो जाने का। स्वाद तो जिह्वा का।।14।।

दौड़ तो जम की। खुद ही तो माया की। देव–देवी पूजना स्वार्थ का।।15।।

नाद तो अनहद की। वर्षा तो सोहम की। रंग तो तत्त्व का।
उजाला तो उनमुनी का। चमकना तो अर्धचन्द्र का। सफेदी तो बिंदु की।।16।।

वेद तो सोहम् का। पल तो सांसा उसांस का। देहधारी जीव आत्म।।17।।

देह रहित परमात्मा। कर्ता पुरुष परमात्मा।।18।।

(सन्त सिंगाजी की वाणी से उद्धृत – साभार)

श्री
सात वार

मंगल से मूल पहचाना। पहले प्राण किया आसमाना।
आवागमन का जाने भेंव। आपहिं करता आपहिं देव।।1।।

बुधवार से बुद्धि विचारे। जीवन मरण की क्रिया सारे।
पाँच तत्त्व लै ब्रह्म में धरे। सौ नर जीते मरते क्यों डरै।।2।।

बृहस्पतिवार बहुरि नहिं आवै। अन देखे को गैल बतावै।
चढ़े अकाश चवघड़िया बाजै। अविचल देख तेराही राजै।।3।।

शुक्रवार सुस्थान विचारे। भेष धर–धर नाहक हारै।
आवत जाता ठीक न लागै। देश हामार पीछे आगै।।4।।

शनिवार शैतान सिधारे। अन्तर घट से वै करतारै।
मणका–मणका सूत्र लगावै। आगले घाट का भेद बतावे।।5।।

दीतवार दीवान को पेलै। सकल धाई आप में खेलै।

नारी पुरुष सब देव स्वाले। भेद होय तो बस्ती में हाले।।6।।

सोमवार को सचराचार। पलक में पावै पार।
कहै जन सिंघाजी जन करो संसा। ते नर मरै न जावै जैसा का तैसा।। 7।।

(संत सिंगाजी की वाणी से उद्धृत – साभार)

श्री
पन्द्रह तिथि

पड़वाँ पहले पस्ता किया। सिर के साटे साहेब लिया।
नहीं जिमी नहीं आसमाना। सिद्ध साथ जहाँ सहज समाना।।1।।

दूजे दूज दूजा नहिं कोई। जो जाने सो आप ही होई।
चंदा सूरज जहाँ जोति लागी। सुख लिया दुःख गया सब भागी।।2।।

तीज त्रिगुण किया पसारा। पर घट जोत तीन लोक उजियारा।
अखंड गहो तो अविचल रहों। मन को देख मन ही को गहो।।3।।

चौथ चंचल मन निश्चल कर धरो। सहज–सहज भवसागर तरो।
नैन खोलकर निरखो सारा। जाय मिलो जहाँ सिरजन हारा।।4।।

पंच पंचमी का करो एक अहारा। पच्चीस छोड़कर खेलो न्यारा।
आकाश लागी अखंड धारा। सदा पीवै सतगुरु का प्यारा।।5।।

छट छटी का अक्षर टारै। कर्म की रेख पर मेख मारै।

तेरा मेरा एक न लावै। सो तो गैवी गैव में जावै।।6।।

सतमी सारा देख पसारा। कोई एक भीतर कोई एक न्यारा।।
जो जन जाने सो हरि का प्यारा। और पशु सब काल का चारा।।7।।

अष्टमी अड़सठ तीरथ माहीं। दूर देस काहे को जाई।
भीतर सपड़े ह्रदय सुद्ध होई। बाहर क्या धौवे गंदी देही।।8।।

नौमी अमल की राह जो पावै। भेद होय तो बस्ती में हालै।
बाट चला सौ अदबीच रहता। उलट चला सो जाय पहुँचता।।9।।

दशमी देही अनी को जारा। स्वाद मेटा खट्टा खारा।
मन चाह खेलो दस ही द्वारा। नैन झरोखे निरखो सारा।।10।।

एकादशी तो खेरस जानी। पुरुष छोड़ि क्यों सेवै नारी।
पिछले दिन पड़ेगा भारी। जब साईं बिना को लेय उबारी।।11।।

बारस बारह रास ते न्यारा। देह बिना साहब है मेरा।
मुक्ता दीसें पर हाथ न आवै। तापर कोई रंडापो गालें।।12।।

तेरस ते सब देख पसारा। कोट सूर्य जहाँ गैबी तारा।
उलटा देखो नैन मँझारा। तब सेवक होय सब संसारा।।13।।

चौदस चौकस बार जो कीना। सकल छोड़ के आप में लीना।
एका एकी दूजा न लेखे। जिम असमान में बेठा पेखे।। (14)

पूनों पूर्ण के लख चन्दा। तू क्या भूले जन्म के अन्धा।
कहें जन सिंघाजी तुम खोजो देही। मुक्त पुरातन राह येही।।15।।

श्री
बारहमासी

फागुन फरकत हो रहों। होनी छांड़ि अनहोनी गहों।
जीवन जीव का करो ठिकाना। हद छांड़ि बेहद में जाना।।1।।

चैत चिता भर रहों उठाया आकाश नीचे धरो।
कर न पाँव रूप न रेखा। आवे न जाय सब जुग देखा।।2।।

बैसाख वस्तु आप में खीजे। पाँच पच्चीस को संग कर लीजे।
उड़ता पक्षी का खोज बतावै। वो नर देह धरै नहिं आवै।।3।।

जेठ जग में भया उजाला। रोम–रोम नख सिख में व्यापा।
अन्धा कहे मैं जाऊँ आकासा। अन्तर में देख सिद्धों का वासा।।4।।

अषाढ़ आप–आप में हटके। निर्गुण हण्डी चौक में पटकै।
काम क्रोध को बस कर रखे। उतरिया कलंक काल नहिं झम्पै।। 5।।

सावन सागर भरिया। थाह अथाह भरा है दरिया।
नहीं है पारा नहीं है वारा। जिसके गर्भ से सकल संसारा।।6।।

भादों भय से न्यारा। मेहा बरसै अखंड धारा।
रिमझिम–रिमझिम बरसै पानी। भीजेगा कोइ बिरला ज्ञानी।।7।।

कुँवार खोजो काया। तीन लोक में आन समाया।
कोस हजार लौ देवे दिखाई। पवन स्वरूपी रहा समाई।।8।।

कातक पल्टै दूजो काया। गैबी पुरुष जहाँ आन समाया।
जिनने पिछला दुःख सह लिया। सौ आवागमन का भेद जो लिया।।9।।

अगहन से तो मिलकर रहो। नयन खोल कर अजपा गहो।
इंगला पिंगला जिनने साधी। सहज सुन्न में ली समाधी।।10।।

पूस में जाय दीदार मिलिया। तुरिया पद में जाय पहुँचिया।
अनन्त सूर्य का भया प्रकाशा। आवागमन का मेटा सांसा।।11।।

माघ मगन बुद्धि विचारो। हिन्दू तुर्क का संग निवारो।
दोनों पन्थ से रहो न्यारा। कहें जन सिंगा सदा मतवारा।।12।।

(संत सिंगाजी की वाणी से उद्धृत – साभार)

जीवन परिचय



नाम : **डॉ. श्रीराम परिहार**

जन्म : 16 जनवरी 1952।
मध्यप्रदेश के खण्डवा जिले के छोटे से गाँव फेफरिया में

शिक्षा : एम. ए. (हिन्दी) पीएच. डी., डी. लिट.।

प्रकाशन :
- आँच अलाव की,
- अँधेरे में उम्मीद
- धूप का अवसाद
- ठिठके पल पँखुरी पर
- रसवंती बोलो तो
- हंसा कहो पुरातन बात
- चौकस रहना है, नवगीत संग्रह,
- कहे जन सिंगा लोक–साहित्य,
- बजे तो वंशी, गूँजे तो शंख
- रचनात्मकता और उत्तरपरम्परा समीक्षात्मक निबंध
- झरते फूल हरसिंगार के
- संस्कृति सलिला नर्मदा, यात्रा वृतांत।
- निमाड़ी साहित्य का इतिहास, बोली का इतिहास।
- भय के बीच भरोसा, ललित निबंध संग्रह।
- परम्परा का पुनराख्यान, चिन्तनपरक निबंध संग्रह।
- लोक की ज्ञान परंपरा, लोक साहित्य
- ललित निबंध : स्वरूप एवं परम्परा शोध एवं समीक्षा ग्रंथ।
- शब्द–शब्द झरते अर्थ (2015) ललित निबंध।

संपादन :
- ललित निबंध एवं नवगीत केन्द्रित अर्द्धवार्षिक पत्रिका अक्षत का 1993 से संपादन एवं प्रकाशन।
- रामकथा की साहित्यिक निष्पत्ति,•दक्षिण भारत का लोक साहित्य। (अखिल भारतीय साहित्य परिषद्।

पुरस्कार : **साहित्य भूषण सम्मान** 2016 उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ। **पं. विद्यानिवास मिश्र स्मृति सम्मान** 2017 विद्याश्री न्यास वाराणसी। **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल अखिल भारतीय पुरस्कार** साहित्य अकादमी, भोपाल 2013–2014। **माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पुरस्कार** ललित निबंध पर साहित्य अकादमी, भोपाल। **वागीश्वरी पुरस्कार** ललित निबंध पर हिन्दी साहित्य सम्मेलन, भोपाल। ईसुरी पुरस्कार लोक साहित्य पर मध्यप्रदेश साहित्य परिषद्, भोपाल। चक्रधर सम्मान ललित निबंध पर सृजन सम्मान, रायपुर (छ.ग.)। **दुष्यन्त कुमार राष्ट्रीय अलंकरण** दुष्यन्त कुमार पाण्डुलिपि संग्रहालय, भोपाल। **राष्ट्र धर्म गौरव सम्मान** ललित निबंध पर राष्ट्रधर्म पत्रिका लखनऊ। **राष्ट्रीय हिन्दी सेवी सहस्राब्दी सम्मान** विश्व हिन्दी सम्मेलन, दिल्ली। **सारस्वत सम्मान** म.प्र. लेखक संघ, भोपाल। **हिमालय कला एवं साहित्य सम्मान** श्रीनगर गढ़वाल, उत्तराखण्ड। **तमिलनाडु हिन्दी साहित्य अकादमी, चेन्नैई** द्वारा ललित निबंध पर सम्मान। **श्रेष्ठ प्राचार्य का पुरस्कार** 2010–11 म.प्र. शासन उच्च शिक्षा विभाग द्वारा।